शीराज़ा

हिन्दी

जे. एंड के.
अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, [illegible]

द्विमासिक

हिन्दी

वर्ष : 26 अंक : 2 जून-जुलाई : 1990

पूर्णांक : 102

प्रमुख सम्पादक
मुहम्मद यूसुफ़ टेंग

सम्पादक
डा० ऊषा व्यास

संपर्क : सम्पादक, शीराज़ा हिन्दी जे० एंड० के० अकादमी ऑफ आर्ट,
कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू ।

फ़ोन : 47243, 42640

मूल्य : 2 रुपये वार्षिक : 10 रुपये

इस अंक में—

□ लेख

लेख

एक विस्मृत कथा-शिल्पी : सुदर्शन

□ रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

यों तो नित्य नवीन कथांकुरों से फूटती पंजाब की उर्वरा साहित्य-भूमि ने अहमद नदीम काज़मी, यशपाल, कृष्णचन्दर, राजेन्द्रसिंह बेदी जैसे कथाकार दिए हैं, पर सुदर्शन का स्थान उनमें आज भी अप्रतिम है। उनका लिखा नाटक 'अंजना' मैंने दस-ग्यारह वर्ष की आयु में पढ़ा था, पर वह उसी दौर में पढ़े गए डी० एल० राय के 'दुर्गादास, शाहजहां, नूरजहां और मेवाड़ पतन' के मुकाबले मुझे जंचा न था। लगभग उन्हीं दिनों माधुरी में प्रकाशित जब उनका प्रहसन 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' पढ़ा तब बड़ा मज़ा आया था। हास्य-व्यंग्य का यह एक रोचक उदाहरण था। हास्य और उस युग की प्रख्यात, पत्र-पत्रिकाओं पर छाए हास्य लेखक जी० पी० श्रीवास्तव के प्रहसनों से कहीं अधिक स्वाभाविक और सफल था। माधुरी में और बाद में दूसरी पत्रिकाओं में जब उनकी कहानियां पढ़ीं तो मन भावानुभूतियों की पारदर्शी परछाइयों में, दिलकश रंगीनियों में घूमने लगा। प्रेमचंद की कहानियों की तरह वे भी रूप-रस रंजना की बाढ़ में बहा ले जाने वाली थीं, जिसमें पाठक का मन जलबिन्दु बनकर बह जाता था। जीवन की वैसी ही आत्मीय अभिव्यंजना, प्रेरणा का वैसा, वही सगापन, वही जीवन-शिल्प और भाषा का वैसा ही मुंहजोर निखार। कहानी की चर्चा चलने पर प्रेमचन्द-सुदर्शन के नाम निराला-पन्त की तरह (कविता में) साथ-साथ लिए जाते थे। प्रेमचन्द भी उनकी श्रेष्ठता के अनुरूप उन्हें आदर देते थे—उन्हें 'महाशय सुदर्शन' लिखते थे।

इसमें संदेह नही कि सुदर्शन पर प्रेमचन्द की जन-मन लुभावनी शैली का प्रभाव है। उर्दू से हिन्दी में आने की प्रेरणा भी संभव है उन्हें प्रेमचन्द से मिली हो। जहां तक मेरी जानकारी है प्रेमचन्द की पहली कहानी हिन्दी में 1916 में (सन्) प्रकाशित हुई थी और सुदर्शन की 1920 में। सुदर्शन की कहानी की विस्तार भूमि भी प्रेमचंद की है यद्यपि सुदर्शन ने चित्रण प्रायः नागरिक जीवन का निम्न मध्यमवर्गी भद्र लोगों का ही किया है। इसलिए वातावरण की सृष्टि, कथोपकथन के कौशल और पारिवारिक परिस्थितियों के निरूपण में सुदर्शन प्रेमचन्द से भिन्न हैं। इसी वृहत्त्रयी के तीसरे अमर कथाकार विशम्भरनाथ शर्मा

कौशिक की कहानियों में जो एकरस, अक्सर 'फ्लैट' हो जानी वाली कौटम्बिकता मिलती हैं वह सुदर्शन की कहानियों में नहीं है। उसकी कहानियों में हरे भरे, खुले, श्यामल, नगर से सटे भूखंडों की हरियाली है। आदर्श के झोंके उनकी कहानियों में जरूर आते हैं, पर भावनाओं के विद्रोह में, व्यंग्य के कड़वेपन और चुभन में जीवन के कुरूप यथार्थ भी रह-रहकर स्पंदित हो उठते हैं। बाह्य और आन्तरिक संघर्षों के बीच सुदर्शन ने सदैव मनुष्यता की विजय दिखाई है, दुनीतियों और दुर्बलताओं में भी आस्था की छवि धूमिल नहीं पड़ने दी है। जान पड़ता है हाड़-मांस-मिट्टी पानी का बना मानव सदा से ऐसा ही सहनशील रहा है—इतना ही त्यागमय और पर-दुख-कातर, परार्थी। सुदर्शन की कहानियों में सद्वृत्ति और सदाचार की विजय होती है—दुराचार पराजित होता है, पर सहज, स्वाभाविक, चिर-परिचित विमल विवेक के साथ, मनोविज्ञान की विश्वस्त प्रतीतियों के साथ। एक गहरी-गहरी मानवीय मिठास उनकी कहानियों को चाशनी की तरह पागे रहती हैं।

सुदर्शन की कहानियां सरस्वती, सुधा, माधुरी में पढ़ते-पढ़ते सोचा करता था कि वे इतने कम शब्दों में, इतनी किफायतशारी के साथ इतनी मर्मस्पर्शी बातें कैसे कह जाते हैं। इतनी करुण, ऐसी विषादाकुल साधुता इन्हें कहाँ मिल जाती है जो धर्म, जाति, संप्रदाय, वर्ग और अन्य सभी प्रकार के भेद-प्रभेदों से निर्लिप्त रहकर केवल मन के प्यार और उसकी शुद्धता को देखती हैं। प्रेमचन्द जैसी तीक्ष्ण, राजनैतिक, इन्कलाबी राष्ट्रीय जलनभरी चेतना सुदर्शन में भले ही न हो, आर्यसमाजी बड़बोलापन लिए सुधारवाद भी कभी-कभी आकर उनकी कला के पास मंडराता हो, पर मानवीय संवेदना का, सर्वजनीन सहानुभूति का झरना उनकी कहानियों में झरता ही चलता है। मानव मन के भीतर भिदे, रमे 'सु' को सुदर्शन इतना अधिक जानते हैं कि त्याग और भावना की तपन का, उत्सर्ग का आलोक उनकी कलम के सामने छाया रहता है। जीवन के यथार्थ के चित्रण में आघात की बिजली पैदा कर देना कठिन नहीं, क्योंकि यथार्थ में एक उसकी निजी, तीखी, अंगभूत चोट भरी रहती है। पर आदर्श को वैसी ही प्राणवत्ता के साथ उभारना-अदृष्ट के दारुण कशाघातों की क्रूर लीलाओं से ग्रस्त और त्रस्त जीवन-व्यापारों के भीतर विश्वास की ज्योति जगाए रहना और उसे अधिकाधिक प्रोज्जवलता प्रदान करना, प्रेमचन्द और सुदर्शन जैसे कथाकार ही जानते हैं, जिन्होंने 'टालस्टाय' और 'चेखव' की नैतिक संस्कारशीलता को आत्मसात किया है।

सुदर्शन ने कवि-हृदय पाया था। उनकी कहानियों में इसीलिए एक द्रावक कोमलता मिलती है। दाम्पत्य जीवन के घात-प्रतिघात, मिलन-विरह और राग-विराग उन्होंने सुकुमारता के साथ उकेरे हैं। प्रेम की मायूसी, लाचारी और उसके भीतर दहकती तीव्रता को सुदर्शन ने अपनी दर्जनों कहानियों में कलाकारोचित संयम के साथ चित्रित किया है। कहीं कोई हलचल नहीं, आक्रोश नहीं, अशालीन उत्तेजना भी नहीं। पचास, साठ वर्ष पहले जब उनकी 'जीवन और मृत्यु' कहानी छपी थी, तब उसमें निहित जीवन वेदना ने कितनों को अभिभूत कर दिया था। यह छोटी कहानी अपने में एक उपन्यास की व्यथा-कथा समेटे मन की गहराई को बेध-बेध जाती है—गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' की तरह। जिस अन्तर्द्वन्द्व को दिखाने में मनोविश्लेषणवादी कथाकार अनुच्छेद के अनुच्छेद ले लेते हैं, उसे सुदर्शन वाक्यों में वैसी ही प्रभाववत्ता के साथ व्यक्त कर देते हैं। रवीन्द्रनाथ की गल्पों में भावना की जो कवित्वमयी दीप्ति मिलती है, वही कुछ-कुछ सुदर्शन की कहानियों में मुझे मिली है। भाषा का वह अजस्र लालित्य भले न हो पर मन की वृत्तियों की वास्तविक या काल्पनिक पर सहज उदात्त उड़ान यहां भी है।

सुदर्शन का जीवन लम्बे अरसे तक संघर्षमय और आर्थिक तनावों से भरा रहा। मुझे याद है हंस के आत्मकथांक (1632) में उन्होंने अपने जीवन की एक घटना लिखी थी, जिसमें उस युग के सृजनशील, समर्पित साहित्यकारों के घोर अभावग्रस्त जीवन की सच्चाई थी। लाहौर में दो या तीन दिन पति-पत्नी दोनों निराहार रहे थे—एक पैसा पास में न था। सुदर्शन को किसी पार्टी में भाग लेने का निमंत्रण मिला था और वे दो लड्डू वहां से छिपाकर ले आए थे। भूखी पत्नी ने उन्हें खाकर अपनी भूख की ज्वाला को शान्त तो क्या और उद्दीप्त ही किया होगा। पत्रिका-संपादन और स्वतंत्र लेखन में उन दिनों सभी धनहीन साहित्यिकों की कमोबेश यही गति थी। उर्दू पत्रिका-'चंदन' का संपादन सुदर्शन ने शायद काफी दिन किया था। फिर साहित्य में ठीक तरह गुजर होते न देखकर वे फिल्म जगत में चले गए थे। वहां शेष जीवन भर कहानी, सीनीरियों, संवाद लेखन का काम किया था। उन्हें चलचित्र जगत में जैसी सफलता मिली, वैसी शायद किसी भी अन्य हिन्दी लेखक को नहीं मिली। पर साहित्य ने अपना एक अग्रणी कथा-पुरुष खो दिया।

सुदर्शन की कहानियों में जीवन तो है ही अर्थात् उसका मनोविज्ञानयुक्त चित्रण तो है ही, एक और विशेषता है, जिसे कल्पना की रचनाधर्मिता कह सकते हैं। उनमें एक नए माया-लोक, एक नए संसार की सृष्टि है जो लेखक के तीव्र भाव-बोध के कारण यथार्थवत् सजीव और मनोरम हो गयी है। संसार पथ के सभी यात्री अपनी-अपनी राह चलते हुए भी कहीं न कहीं मिलते हैं। कभी स्नेह, आत्मीयता, सहानुभूति पाते हैं। कभी विरक्ति और घृणा। कोई आगे जाता है, आगे जाने वालों की सहायता करता है। कोई पीछे जाता है, औरों को पीछे ठेलता है। कुछ एक-दूसरे के साथ चलने में सुख पाते है। पर सभी अपनी-अपनी राह के पथिक है। अंधकार में झिलमिलाते आलोक की तरह कुछ ही याद शेष रह जाती है। सुदर्शन की कहानियों में इसी जीवन-यात्रा में कल्पना और विवेक साथ-साथ चलते हैं। कल्पना की अतिशयता और आकाशी उड़ानों पर विवेक अनुशासन रखता है। कल्पना की आंखें जहां मुंदने लगती है, वहां विवेक उन्हें खोलता है।

सुदर्शन को आज हिन्दी संसार भूल चला है। जिसने एक युग तक मानव के अन्तर्जगत और बहिर्जगत के संघर्षों, विस्मयपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन कर भावानुभूत सुख-दुख की समस्त घटनाओं के तथ्य के भीतर सत्य का रहस्य उजागर किया, वह आज शायद ही किसी कथा-संकलन में स्थान पाता हो।

व्यवसाय कुशल, प्रचार निपुण पुराने और नए स्वयं प्रकाशक या प्रकाशनों पर हावी लोगों में सुदर्शन आज अस्वीकृत और तिरस्कृत हैं। कृतघ्न हिन्दी संसार उग्र, सुदर्शन, राधा-कृष्ण, रांगेय राघव, आचार्य चतुरसेन शास्त्री और भगवती प्रसाद वाजपेयी को भूलने में ही सहूलियत की सांस लेता है। आज जो अपने बुझ-बुझ जाने वाले चिराग खुद ही नक़दी या उधारी के तेल से जलाए जाते हैं, वे शायद ही कभी सोचते हों कि कालान्तर में उनकी भी यही गतिहोनी है। उनमें से चार-छः को छोड़कर प्रायः सभी को इसी नियति की गजक बनना है।

अपनी प्रसिद्ध कहानी 'कवि की पत्नी' के अन्त में सुदर्शन ने लिखा है—'मनुष्य मर जाता है, पर उसका प्रेम जीता है।' कभी रही होगी यह बात सच पर आज तो इसका उल्टा नजर आता है। वरना साहित्य की पवित्र दुनिया में उपेक्षाओं और 'पर कीरति को खोकर कीरति' चाहने वाली प्रतिस्पर्धाओं के इतने अंबार न लगे होते। □

लेख

समकालीन महिला कथाकारों की सौन्दर्य-दृष्टि : पुरूष के संदर्भ

□ डॉ० शशि मुदीराज

सवाल यह है कि क्या सौन्दर्य-दृष्टि या समूचे सौन्दर्यशास्त्र में स्त्री और पुरूष की दृष्टि से वर्गीकरण और विभाजन संभव है ? क्या यह आवश्यक है ? क्या यह उचित है ? इस सवाल का, और एक ही सवाल इन तीनों अनुभागों का उत्तर है – हां। कारण यह कि सौन्दर्य-दृष्टि जीवन-दृष्टि का ही अंग होती है, कहना चाहिए कि उसका प्रतिफलन होती है, और इस दृष्टि से स्त्री की जीवन-दृष्टि और उसकी रचना-दृष्टि एक लंबे सामाजिक अनुकूलन तथा प्रशिक्षण की परिणति है। एक ऐसा समाज जो पुरुष-शासित है, जिसमें अनुशासन और निर्णय का कोई अधिकार उसका नहीं है, ऐसी सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत से प्राप्त और प्रदत्त सौन्दर्य-दृष्टि कितनी सीमा तक उसका अपना अर्जन हो सकती है ? जैसा कि वर्जीनिया वुल्फ अपने 'ए रूम ऑफ वंस ओन' में सवाल उठाती हैं—''अगर आप एक स्त्री हैं तो आपको लगा होगा कि कभी-कभी अकस्मात् आपकी चेतना के दो टुकड़े हो जाते हैं और अचानक आपको लगने लगता है कि जिस संस्कृति के बीच आप खड़ी हैं, आप उसकी हकदार नहीं बल्कि आपकी हैसियत एक बाहरी व्यक्ति की है जो एक अजनबी और तटस्थ दर्शक की तरह भटक रहा है।'' ऐसे में महिला रचनाकार, उदाहरण के लिए महिला कथाकार, वह भी आधुनिक हिन्दी की, तक के आगे सौन्दर्य के प्रदत्त प्रतिमान, सौन्दर्य-दृष्टि को रूपायित करने वाली प्रदत्त स्थितियां और सौन्दर्य की कसौटियां जो उसने एक दीर्घ सामाजिक प्रशिक्षण और अनुभव के बाद प्राप्त की हैं, एक सुविधा और चुनौती बनकर खड़े हो जाएं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह सौन्दर्य-दृष्टि कहां तक 'प्रदत्त' रही है और कहां तक 'अर्जित' हो सकी है, यह तो उसकी रचना-स्थितियों से गुजरकर ही निर्णय किया जा सकेगा।

भारतीय नवजागरण हमारे रचनाकारों के सौन्दर्य-विवेक में अभूतपूर्व परिवर्तन का काल था। ''सुन्दर हैं विहग सुमन सुन्दर/मानव तुम सबसे सुन्दरतम''—इसकी केन्द्रीय संधारणा थी, और यह अपने प्रकर्ष पर पहुंचा—''श्याम तन भर बंधा यौवन/नत नयन, प्रिय कर्मरत मन'' में। कर्म की आंच में तप कर ही स्त्री का यह रूप निखरा है, और यह निखरा हुआ रूप स्वयं रचनाकार के नवीन, मानवीय और कर्म-संघर्ष से उपजे सौंदर्य विवेक का साक्षी

है। यह रीतिकाल की सर्वथा विरोधी दृष्टि है जिसके सबसे बड़े व्याख्याकार हुए हैं प्रेमचन्द, लिखते हैं—"अगर उसको सौन्दर्य देखने वाली दृष्टि में विस्तृति आ जाए तो वह देखेगा कि रंगे होठों और कपोलों की आड़ में अगर रूप-गर्व और निष्ठुरता छिपी है, तो इन मुरझाये होठों और कुम्हलाये हुए गालों के आंसुओं में त्याग-श्रद्धा और कष्ट-सहिष्णुता है। हां, उसमें नफासत नहीं, दिखावा नहीं, सुकुमारता नहीं।" यह संघर्ष और साधना से उपजी सौन्दर्य-दृष्टि है और आधुनिक सौन्दर्य-दर्शन की प्रस्तावना है। आधुनिक महिला कथाकारों, विशेषकर समकालीन, में दीप्ति खंडेलवाल ने सौन्दर्य का अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है। "कोहरे" उपन्यास में वे लिखती हैं—"सौन्दर्य, सच्चा सौन्दर्य वह होता है, जो जितना निकट आता जाए उतना सुन्दरतम होता जाए।" और वे व्याख्या करती हैं—"दाम्पत्य प्रेम, प्रणय और परिणय का आधार एवं आकर्षण सौन्दर्य ही होता है। किसी न किसी रूप में…चाहे वह कजरारी आंखों का हो… चाहे भावना के उजले फूलों का…अर्थात् चाहे तन का हो या मन का…।" इस में सौन्दर्य का संबंध पूरी तरह मानवीय संबंधों के साथ और उसकी सापेक्षिकता में है। दीप्ति खंडेलवाल का समूचा कथा-साहित्य सौन्दर्य की इसी दृष्टि से रचित है। 'कोहरे' की नायिका नायक सुनील के शारीरिक सौन्दर्य पर मुग्ध है, जो "ग्रीक गॉड" जैसा है। सुनील का वर्ण 'अति गौर' है, यह "अति गौर" लेखिका पर इस कदर छाया हुआ है कि जब सुनील क्रुद्ध होता है तो भी—"सुनील का अति गौर वर्ण मुख जैसे किसी तमतमाहट से आरक्त हो उठा।" यहां क्रोध मुख को विकृत नहीं कर रहा, बल्कि उसे 'आरक्त' बना रहा है। सुनील का सारा चरित्र इसी व्यंग्य-भाव से प्रक्षेपित है। सौन्दर्य केवल आकृति का नहीं, प्रकृति का भी होता है, और इन दोनों का असामंजस्य मानवीय संबंधों की ट्रेजेडी को जन्म देता है। 'कोहरे' की केन्द्रीय समस्या यही ट्रेजेडी है, जहां मेजर सिन्हा अति आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी हैं "ऊंचा कद, खरा गोरा रंग, आकर्षक व्यक्तित्व, जिसको उनके फौजी होने ने कस कर रख दिया था—वह सदा तन के रहते थे, अपने सुदर्शन व्यक्तित्व या अपने आभिजात्य आकर्षण का पूरा एहसास उनके होठों से लेकर आंखों तक छाया रहता है।" जबकि उनकी पत्नी—"सांवला रंग, छोटा कद"—बिल्कुल अपने पति का प्रतिरूप। इस त्रासदी को और अधिक गहराने के लिए एक और युगल लाया गया है—मंगल धोबी और उसकी पत्नी का। मंगल धोबी का रूप देखिए—"बड़ी-बड़ी सुर्ख डोरों वाली आंखें, घनी झब्बेदार मूंछें, पापा जैसा ही ऊंचा पूरा कद, पापा जैसा ही काफी गोरा रंग और उसकी पत्नी—"दुबली पतली मरियल काली", लेकिन यही मंगल धोबी की लाड़ली पत्नी है जबकि मेजर सिन्हा की पत्नी अपने इस नाचीज व्यक्तित्व के लिए पति की उपेक्षा, व्यंग्य और प्रताड़ना सहते हुए अंत में यह सोचने पर विवश हो जाती है—"काश, तुम मंगल धोबी हो सकते…काश।" यानी कि "सौन्दर्य देखने वाले की आंखों में होता है, पात्र में ही नहीं, यानि कि सौंदर्य हो तो उसे परखने, देखने, स्वीकार करने वाली आंखें भी चाहिए, अन्यथा भरपूर सौन्दर्य भी व्यर्थ होकर रह जाता है।" दीप्ति खंडेलवाल की सभी नायिकाएं इसी शिकायत से त्रस्त हैं—"पति-पुरुष" की आंखों में अपने सौन्दर्य की कोई मान्यता न पाकर उसके व्यर्थ होते जाने का एहसास। सौन्दर्य का संबंध चरित्र से है, और पहली दृष्टि में मुग्ध कर लेने वाला सौन्दर्य भी भीतरी चरित्र की विकृतियों के साथ झूठा हो जाता है। "वह तीसरा" की नायिका को नायक संदीप का सौन्दर्य ऐसा ही लगता है—"संदीप की आंखें बड़ी नहीं थीं, किन्तु मुझे लगा पुरुष की आंखें ऐसी ही होनी चाहिए। संदीप के दांत ऊबड़-खाबड़ थे, मैंने सोचा बेतरतीब दांतों में भी अपना एक सौन्दर्य होता है। संदीप गोरे नहीं थे पर

कृष्ण भी तो काले थे।" और, फिर इसकी परिणति देखिए—"संदीप की आंखें छोटी हैं, संदीप के दांत ऊबड़ खाबड़ हैं, संदीप गोरे नहीं।" यह सौन्दर्य का वस्तुगत साक्षात्कार है और फिर जब संदीप की भीतरी कुरूपता उघड़ जाती है तब नायिका का अनुभव है—"सांवला कहां, खासा पक्का रंग है। खर्राटे लेने में चेहरा कैसा विकृत हो रहा है।" इस प्रकार सौन्दर्य मानवीय संबंधों के जटिल तंत्र का ही अनुभाग है। फिर भी दीप्ति खंडेलवाल के अनुसार पुरुष-सौन्दर्य के लक्षण गिनाये जाएं तो सूची बनेगी—"ऊंचा कद और खरा गोरा रंग, चौड़ा सीना जिस पर सिर टिकाया जा सके और सबल भुजायें जिनमें सिमटा जा सके। यह पुरुष-सौन्दर्य से नारियोचित अपेक्षाएं हैं जिन्हें विशुद्ध नारी वाले लहजे में लेखिका अभिव्यक्त कर रही है। "बालों से भरी विशाल छाती" केवल दीप्ति खंडेलवाल ही नही, सूर्यबाला निरूपमा सेवती, कुसुम अंसल और शुभा वर्मा आदि अधिकांश लेखिकाओं का 'ऑब्सेशन" है। कुसुम अंसल के उपन्यास "उसकी पंचवटी" में नायिका के संदर्भ में—"बालों से भरी उसकी विशाल छाती पर एक बार सिर टिका देने की इच्छा मन में प्रबल हो उठी।" और, सूर्यबाला के उपन्यास "सुबह के इन्तजार" का एक पात्र "सीने तक बटन खोले मतवाले हाथी की तरह झूमती चाल" से आता है। शुभा वर्मा के उपन्यास "बीते हुए" की नायिका का कहना है—"सीने पर बाल मर्दों की शोभा है" इस पर नायक का उत्तर है—"आदमी हूं, रीछ नहीं।" यह इस पारंपरिक सौन्दर्य-प्रतिमान पर व्यंग्य है। ऊंचा-पूरा कद और भरा-पूरा शरीर पुरुष-सौन्दर्य की निर्धारित प्रतिमान है, चाहे वह ममता कालिया हों या बिन्दु सिन्हा। "प्रेम कहानी" के नायक गिनेस के लिए ममता कालिया लिखती हैं—"वह इतना सुन्दर इतना बलिष्ठ इतना पौरूषमय लग रहा था मानो किसी मैगज़ीन से काटी गयी तसवीर।" और "बेघर" का नायक परमजीत—"खूबसूरत था और गोरा। ऐसी खूबसूरती सिर्फ पंजाबी लड़की में होती है, जिनमें कद, डील-डौल रंग और नक्श सभी एक-दूसरे से होड़ लेते हैं।" शिवानी के उपन्यासों में नायिकायें ही नहीं नायक भी सुन्दरता के प्रतिमान होते हैं, यह तो सभी जानते हैं, किन्तु शिवानी के "गैंडा" के नायक चरित्र की ओर जिसमें लेखिका ने आकृति और प्रकृति के बीच "कण्ट्रास्ट" उत्पन्न किया है। वह इतना मोटा, काला और कुरूप है कि उसकी अति सुन्दरी पत्नी ने उसका नाम ही गैंडा रख दिया है और व्यंग्य से अपने सुंदर होंठ टेढ़े कर वह कहती है—"मेरे गैंडे की चमड़ी भी निखालिस गैंडे की तरह है।"—लेकिन उसका चरित्र हीरे सा तराशा हुआ है। उसके चरित्र के सौन्दर्य के आगे उसकी पत्नी का शारीरिक सौन्दर्य कुरूप सिद्ध होता है। "महाभोज" के दा साहब का रूप-चित्रण देखिए—"गौरवर्ण, सुता हुआ शरीर, कहीं भी एक इंच फालतू चर्बी नहीं दिखाई देती। दीखती है तो केवल गरिमा।" यह फालतू चर्बी दा साहब के शरीर पर ही नहीं मन-मस्तिष्क से भी दूर है। "सोनाली दी" में रजनी पनिकर चित्रण करती हैं—"महिम दा लम्बे और सुदृढ़ हैं, हंसता सा मुख, आत्मविश्वास ने मानो देह धारण की हो।" यह आत्मविश्वास ही पुरुष के बाहरी व्यक्तित्व में तेज भरता है। और दूसरी ओर निरूपमा सेवती की एक अभिव्यक्ति देखिए—"हां, अच्छा है, बहुत अच्छा है यह बांका सा नौजवान। ऊंचा, लंबा, अच्छा-खासा बदन। छवि ऐसी कि आंखों में बस जाए, दिल में उतर जाए।" यह रोमाण्टिक, और मुग्धाविष्ट अभिव्यक्ति किसी सस्ते उपन्यास के रोमांच का थ्रिल भले ही देती हो, एक परिपक्व, संघर्षरत, मानवीय सौन्दर्य-विवेक का प्रमाण तो हरगिज नहीं बन सकती। प्रश्न यह है कि आज के इन स्त्री कथाकारों में से कितनों ने उस वस्तुपरक संघर्षरत सौन्दर्य-दृष्टि को प्राप्त किया है, कितनों में वह जीवन-विवेक है जो जीवन की संघर्षशील

स्थितियों में रूपाकार लेते सौन्दर्य को मान दे सके। पुरुष का पौरुष केवल कठोरता में नहीं, न ही स्त्री का स्त्रीत्व केवल कोमलता में है। वह प्रेम, वह सौन्दर्य जो जीवन की असहनीय स्थितियों में पनपता है, उन्हें सह्य बनाता है, वह, जिसकी एक झलक प्रेमचंद 'गोदान' के उस प्रसंग में देते हैं जब धनिया खेत में रखवाली कर रहे होरी को झुनिया के कुकृत्य की खबर देने जाती है, लेकिन, प्रतिक्रिया में होरी के क्रोध को देखकर आशंकित हो उठती है और होरी के गले में बांह डालकर अनुनय करती है। जहां प्रेमचंद लिखते हैं कि उस आलिंगन में, धनिया के उस मुरझाये रूप में जीवन-भर का संघर्ष और उसके बीच पनपता सौन्दर्य उमग आया था। यह नया सौन्दर्यशास्त्र है, जिसकी नींव श्रम और पसीने पर रखी गयी है, जिसकी तह में यातना और वेदना का पंकिल जल है। इसी संदर्भ में महाश्वेता का उपन्यास "चोट्टि मुण्डा और उसका तीर" याद आता है, जहां, चोट्टि मुण्डा और उसकी पत्नी के संभोग का चित्रण करते हुए वे लिखती हैं—"मन की पीड़ा से, अबोध्य वेदना से चोट्टि रात में वर्षा का लाल जल हो गया, पत्नी ने नदी बन छाती खोलकर उसे अपने अन्तर में लिया, मिला लिया।" यह वह सौन्दर्य-दृष्टि है जिसमें प्रणय, प्रणय की विशुद्ध जैविक अभिव्यक्ति, स्त्री-सौन्दर्य, पुरुष-सौन्दर्य सब कुछ एक मानवीय आत्मीय और पक्षधर प्रतिबद्धता के संदर्भ से जगमगा उठे हैं। "वर्षा का लाल जल" और "उसे ग्रहण करती हुई नदी"—क्या यह एक सौन्दर्य शास्त्र की प्रस्तावना नहीं है, क्या यह उस स्त्री-चेतना की एकान्तिक उपलब्धि नहीं है, जिसने सुदीर्घ प्रशिक्षण और अनुकूलन की सीमाओं को तोड़कर अपनी निजी सौन्दर्य-दृष्टि अर्जित की है। सवाल यह भी है हिन्दी में आज की महिला कथाकारों ने इस सौन्दर्य-दृष्टि के "अर्जन" की प्रक्रिया में कितनी सहभागिता की है? □

लेख

पुराख्यान के पुनराख्यान की चुनौती और 'पवन-पुत्र' की सार्थक भूमिका

☐ डॉ० पुष्पपाल सिंह

मिथक, पुराख्यान, का पुनराख्यान रचनाकार के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती होता है। यह चुनौती तब और भी बड़ी हो जानी है जब वह मिथक अत्यधिक लोकप्रिय होता है। भारतीय-जन-मानस में राम एवं कृष्ण-कथा के मिथक इतने अधिक लोकप्रिय और जन-मन में रमे हुए हैं कि अक्षर-ज्ञान से शून्य व्यक्ति भी उनके ज्ञान से परिपूर्ण है। परंपरा से प्राप्त राम-कथा और कृष्ण-कथा का ज्ञान उसके सामूहिक अवचेतन (कलैक्टिव अनकांशियसनेस का महत्वपूर्ण घटक है। ऐसी जानी हुई कथा को जिसमें कथा का कौतूहल, समापन की रहस्यात्मकता शेष न हो रोचक रूप में प्रस्तुत करना रचनाकार के लिए जोखिम का काम है। उस जानी हुई, बहुत-बहुत परिचित कथा में ऐसे सूत्र और तत्व अनुस्यूत करना जो युग-सम्मत रूप में पारंपरिक कथा को नयी अर्थ-प्रतीति प्रदान कर सकें एक बहुत बड़ा काम है। कविता में यह कार्य फिर भी होता रहा है किंतु गद्य के शुष्क-विधान और यथार्थ से निकटतर संगीत के कारण ऐसे प्रयोग काम देखने में आते हैं। किंतु इधर नरेन्द्र कोहली, रामकुमार "भ्रमर", भगवतीशरण मिश्र, गोविंद मिश्र, आदि ने कुछ ऐसे उपन्यास दिये हैं जो मिथक की शक्ति से परिचित कराते हुए पारंपरिक राम एवं कृष्ण कथा को उसकी पूरी मिथकीय सार्थकता में प्रस्तुत कर सके हैं। राम कथा को उसके पूरे विस्तार और विविध आयामों में भगवतीशरण मिश्र ने अपने प्रकाशित उपन्यास 'पवन-पुत्र' (1987 ई०) में प्रस्तुत किया है।

यह बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है कि आधुनिक युग में साहित्यकार बारम्बार अपनी इस परंपरा की ओर क्यों मुड़ता है? वस्तुतः परंपरा कोई मृत रूढ़ि नहीं है, हमारे यहां उसे नित्य षोडशी कहा गया है, नित नूतन !! हमें अपने वर्तमान की जीवन-स्थितियों के साक्षात्कार के लिए उनके सम्बन्ध में अपनी दृष्टि के सही संप्रेषण के लिए मिथक का आश्रय लेना पड़ता है। कवि अथवा किसी भी साहित्यकार के द्वारा मिथक को अपनाने की यह

प्रक्रिया सायास नहीं होती अपितु अपनी रचना-प्रक्रिया में इससे पूरी तरह बेखबर रह कवि मनीषा स्वतः ही मिथक को अपना लेती है। इसके द्वारा अपने समाज के वर्तमान और परंपरा से तादात्म्य-स्थापन से साहित्यकार की रचना और अधिक प्रभावी तथा जीवंत हो उठती है। उदाहरण से इस बात को समझा जाए तो द्वितीय महासमर के उपरांत जो विश्व और हमारे राष्ट्र की स्थिति थी, उससे विचलित कवि का मन 'कुरुक्षेत्र' का प्रसंग अपनाता है। मिथक को अपनाने की यह प्रक्रिया इतनी अनायास होती है कि रचनाकार को पता ही नहीं चलता कि कब उसकी कल्पना उस मिथक को सहज, अनायास, ग्रहण कर लेती है। मिथक के तुलनात्मक सादृश्य को रचना-मानस स्वाभाविक रूप में पकड़ लेता है।[1] अपने सांस्कृतिक मूल्यों, गहन आस्था, विश्वासों एवं सामाजिक सत्यों की अभिव्यक्ति के लिए मिथक की अभिव्यक्ति अनिवार्य ही हो उठती है। वह समय-प्रवाह में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो कर मानव-चेतना पर पूरी तरह छा जाता है।[2] ऐसा करने में साहित्यकार अपनी परंपरा को अपना कर भी दृष्टि की आधुनिकता का परिचय देता है। इसीलिए भारतवर्ष में ही नहीं अपितु समस्त विश्व के साहित्य में आधुनिकता की यह सर्वप्रमुख विशेषता रही है कि साहित्यकार ने बार-बार अपनी परंपरा का उत्खनन कर मिथकों को अपनाया है।[3]

साहित्य में मिथक-सर्जना की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति यह रही है कि मिथकों के उपेक्षित पात्रों को चीन्ह कर उनके चरित्र को प्रस्तुत किया जाता है। राम-कथा को ही लें तो उर्मिला से लेकर कैकेयी, भरत, माण्डवी तक अनेक पात्रों को आधुनिक युग में आ कर पुनर्प्रतिष्ठा मिली। इसी क्रम में भगवतीशरण मिश्र का 'पवन-पुत्र' उपन्यास आता है जिसमें पवन-पुत्र हनुमान को केन्द्र में रखकर राम-कथा का पुनराख्यान किया गया है। मिथक की एक सीमा यह भी होती है कि उसमें पात्रों का पुनर्संस्कार कर भी उन पात्रों को कमतर करके, महत्व को घटाकर नहीं आंका जा सकता जो उस देश की परंपरा में पूज्य या 'प्रभु' बन जाते हैं। जिस किसी साहित्यकार ने ऐसा किया उसने अपने प्रयत्न में मुंह की खाई, यथा बौद्ध-प्रभाव से आक्रांत आनंद कुमार का पृथुल काव्य (महाकाव्य ?) 'अंगराज' इसीलिए एक उपहास-सा बन कर रह गया जिसमें महाभारत और कृष्ण-कथा के पूज्य पात्रों को गर्हित स्वरूप प्रदान किया गया था। 'पवन-पुत्र' के उपन्यासकार की यह बहुत बड़ी सफलता है कि वह अपने कथा-नायक को पूर्ण महत्व प्रदान करता हुआ भी राम-कथा के महत्तम चरित्र श्री राम को कहीं भी 'दोयम' नहीं बनाता है, 'अव्वल' ही रखता है। इस कृति के हनुमान अपनी सारी शक्ति और महत्ता का श्रेय भगवान श्री राम को ही प्रदान करते हैं, पग-पग पर अपने को उनका एक अदना सेवक-मात्र मानते हैं। वे जो कुछ भी करते हैं वह सब अपने प्रभु राम की अनुकंपा से। कथा-नायक के यश वर्णन में ऐसा कलात्मक संतुलन विवेच्य उपन्यास में सर्वत्र ही बना रहा है। यदि रामकथा के अनन्य गायक महाकवि तुलसी की घोषणा थी, "नानापुराण निगमागम सम्मतं यद रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि" और उन्होंने इस "क्वचिदन्यतोऽपि" के द्वारा ही राम-कथा को अमर और भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड बना दिया तो भगवतीशरण मिश्र ने भी हनुमान विषयक समस्त ग्रन्थों, रामायणों, काव्य, नाटक तथा इन सबके साथ ही लोक परंपरा में प्राप्त अनुश्रुतियों आदि का सहारा लेकर अपने "क्वचिदन्यतोऽपि" के साथ "पवन-पुत्र" को उस चरित्र का एक विश्वकोशीय रचनात्मक आख्यान बना दिया है, "प्रयास यह रहा है कि इस कथा के माध्यम से वह सब कुछ कह दिया जाए जो अब तक हनुमान के सम्बन्ध में कहीं न कहीं कहा जा चुका है, ताकि

इस पुस्तक के पढ़ने के बाद हनुमान के सम्बन्ध में कम-से-कम उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में और कुछ पढ़ने को नहीं रह जाए।"[4] हनुमान के व्यक्तित्व को इस रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है कि उनकी बहुत सारी अतिमानवीय विशिष्टताओं को तर्क-संगत, वर्तमान युग के लिए विश्वसनीय, रूप में प्रस्तुत किया जा सके। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि सर्वत्र ऐसा नहीं हो सका है कि हनुमान के दैवी चरित्र को मानवीय आधार दिया जा सका हो, "हनुमान के अति-मानवीय अथवा दैवी स्वरूप के ऊपर मात्र इसीलिए एक मानवीय रूप को आरोपित करने का प्रयास नहीं किया गया है कि वह पाठक की रूचि के अधिक अनुकूल बैठे। लक्ष्य यहां पाठक की तर्कशील बुद्धि को संतुष्ट करना नहीं बल्कि एक पौराणिक पात्र को यथासाध्य पाठकों के समीप लाना और उसके चरित्र के अनुद्घाटित पक्षों को उद्घाटित करना है।"[5] वस्तुतः यहां आस्था का खण्डन नहीं अपितु उसका विवेकयुत मण्डन हुआ है। पूरी कृति में लगता है कि हम एक सांस्कृतिक यात्रा में उपन्यासकार के साथ निकले हैं।

'पवन-पुत्र' की सफलता का एक और आकर्षण बिंदु यह है कि यहां लेखक की शोध रचना पर भारी बन कर नहीं आती अपितु वह कृति की रम्यता का आधार बनती है। कुछ औपन्यासिक कृतियों में शोध इतनी प्रमुख होकर उभरती है कि रचनात्मकता पूरी तरह क्षत हो जाती है, यथा हाल ही (1988 ई०) में प्रकाशित डॉ० दशरथ ओझा की औपन्यासिक कृति 'एकता के देवदूत शंकराचार्य' जो मात्र इतिहास और जीवनी बन कर रह जाती है। उपन्यास की। 'रमणीयता' से दूर !! ऐसा ही कृष्ण भावुक की औपन्यासिक कृति 'हरा दर्पण' के सम्बन्ध में कहा जा सकता है जिसमें कश्मीर का इतिहास अपने पूर्ण विवरणों में प्रस्तुत हुआ है किंतु वह कहीं भी 'उपन्यास' नहीं बन पाता है। 'पवन-पुत्र' में आद्योपांत ऐसी गजब की पठनीयता है कि वह राम-कथा का परिचित वृत्तांत भी पृष्ठ के बाद पृष्ठ उलटने को विवश करता है। बड़े आकार के 360 पृष्ठों में उपन्यासकार पूरी तरह अपने पाठक को चिर-परिचित राम-कथा में ऐसे रमाता है कि अर्थ के नये वृत्त खुलते से चले जाते हैं। कथा में प्रसंगों की नियोजना आवश्यक रूप में ही हुई है, एकाध-स्थल को छोड़ कर, यथा 'इक्कीस' अध्याय में राक्षसियों के प्रकार जब उपन्यासकार बाल्मीकी के आधार पर बताने लगा है तो प्रसंग में बहुत विस्तार आ गया है, इसी प्रकार 'बत्तीस' अध्याय में चन्द्रमा का प्रसंग अनावश्यक रूप से आया है, इन्हें सुविधापूर्वक छोड़ा जा सकता था। इन स्थलों के अतिरिक्त कथा-संघटना में एक संगुम्फन (काम्पेक्टनेस) बना रहता है।

राम-कथा के पारंपरिक रूप में हनुमान का महत्व रावण-वध प्रसंग तक ही सीमित रहता है किन्तु विवेच्य उपन्यास में राम के उत्तरकालीन जीवन में भी हनुमान के महत्व और मर्यादा का समुचित स्थापन हो सका है। रावण-वध इकतालसिवें अध्याय (पृ० 203) तक ही हो जाता है, उसके पश्चात् उनहत्तर तथा सत्तरवें—उपसंहार (पृ० 360) तक कथा का प्रसार है। जिसमें राम के अश्वमेघ यज्ञ के पश्चात् भूमिजा सीता के पृथ्वीलीन होने तक की कथा कही गयी है, 'उपसंहार' में तो द्वापर के कृष्णावतार तक कथा के सूत्र को लाया गया है, भक्त हनुमान की प्रतिष्ठा के लिए उनके प्रभु ने कच्छप रूप में अपनी पीठ ही पुल के नीचे लगा दी थी। कहना न होगा कि कथानक की यह विस्तृति उपन्यास को एक महा-काव्यात्मक विस्तार प्रदान करती है।

अपने कथानायक हनुमान को प्रारम्भ से ही उपन्यासकार ने अत्यन्त भव्यता से मण्डित

किया है और उनके सभी दैवी गुणों को मानवीय संगति देने की चेष्टा की है किन्तु वह एक क्षण के लिए भी भूलना नहीं चाहता कि पवन-पुत्र भगवान के भक्त होते हुए भी देव-कोटि में हैं। अंजना को दर्शन देते हुए भगवान शिव के मुख से यह कहला कर लेखक ने अपने चरित-नायक के चित्रण के लिए आधार-भूमि प्रस्तुत कर दी है, "तुम्हें अत्यन्त पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगा जिसकी गति अंतरिक्ष, पाताल और पृथ्वी तीनों में अबाधित होगी और जिसके समान योद्धा, गुणज्ञ और भगवद्भक्त न तो अब तक त्रैलोक्य में हुआ है न भविष्य में होगा। स्वयं अपने एक अंश से अवतरित हो रहा हूँ मैं। रुद्रावतार होगा तुम्हारे आंगन में अंजना। शंकर-सुत की ही संज्ञा पायेगा तुम्हारा तनय।'[6] इस प्रकार दैवी वरदान से प्राप्त स्वयं भगवान शिव के अंशावतार की यशोगाथा को गौरवपूर्ण आख्यान विवेच्य कृति का उद्देश्य है। उनका जन्म ही राम-काज करने को हुआ है, माता अंजना उन्हें स्वयं इस जीवन-अनुष्ठान में नियोजित करती हैं। फलतः उनकी शक्ति, बल, विश्वास, कर्म, आस्था सबका केन्द्र श्रीराम ही हो जाते हैं। माता के द्वारा दिया गया उपदेश जीवन भर उनका पथ आलोकित करता है, 'जब कभी संकट में पड़ो, अनिर्णय, अनिश्चय की स्थिति तुम्हें ग्रसित कर ले, तो मात्र उनका ध्यान ही सारे संकट, संपूर्ण अनिश्चय-अनिर्णय को समाप्त करने को पर्याप्त होगा। आज़मा कर देखना उसे, परीक्षा ले कर। कभी निराश नहीं होंगे तुम।"[7] मां का दिया हुआ यह दीक्षा-मन्त्र हनुमान गाँठ में बांध लेते हैं, उसे अपने जीवन का पाथेय बना लेते हैं। 'राम-कार्य-पालन' में 'राम-शर की तरह लक्ष्य-भेद के तत्पर' हनुमान अपना संपूर्ण जीवन राम के लिए जीते हैं, इस रूप में कि वे भक्त और भक्ति के चरमादर्श बन सकें। हृदय को चीरकर अपनी भक्ति का साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले भक्त का जीवन निश्चय प्रणम्य हो जाता है।

हनुमान की शक्ति और बल को विश्वसनीय बनाने का लेखक जो प्रयत्न करता है उसमें कहीं-कहीं बड़े ग्राह्य तर्क प्रस्तुत किए गये हैं। राम रावण युद्ध से पूर्व राम और लक्ष्मण के हर-प्रयत्न को विफल करने के लिए हनुमान अपनी पूंछ फैला कर राम-सेना के प्रवेश द्वार को सुरक्षित रखते हैं, यदि कुछ राक्षस उसे लांघने का प्रयत्न करते हैं तो उसके विद्युत-प्रभाव से वे अपने प्राण गंवा चुके थे। इस रहस्य को खोलते हुए हनुमान बताते हैं, "इसमें कोई खास रहस्य नहीं था। हमारे शरीर में तो विद्युत-प्रवाह वर्तमान होता ही है। इसे आज की वैज्ञानिक भाषा में जैविक विद्युत बोलते हैं। शरीर के जो अंग बाहर की ओर निकले होते हैं, जैसे हाथ, पैर और उनकी उंगलियां आदि उनमें यह प्रवाह अधिक ही होता है। हमारी पूंछ में यह विद्युत इसलिए अधिक ही प्रवाहित रहती है, मैंने अपनी साधना से इसे और तीव्र कर लिया था। आज भी साधक-सिद्धों के शरीर के अंदर ही नहीं, उनके पूरे परिवेश में भी एक विद्युत-प्रवाह व्याप्त रहता है।..... आज तो यंत्रों द्वारा इसकी जांच भी हुई है।"[8] इस प्रकार अपने चरित-नायक के साथ उपन्यासकार पूर्ण न्याय कर सका है, परंपरित रूप की रक्षा करते हुए भी उनके देवत्व को यथार्थ का आधार देने की भरसक चेष्टा की गयी है जिसके आधार पर आस्थावान मन की हनुमान जी के स्वरूप में आस्था और भी दृढ़तर होती है।

प्रस्तुत उपन्यास की रोचकता का एक बड़ा घटक उपन्यासकार की दृश्य-नियोजन की अद्भुत क्षमता है। परम्परा-प्राप्त कथा-प्रसंगों को तो सभी जानते हैं किन्तु लेखक दृश्यों की नियोजना इतने सूक्ष्म विस्तार में करता है कि वह दृश्य कल्पना-चक्षुओं के सामने सहज ही

नवीन रूप में मूर्त हो उठता है। हनुमान के लोकोत्तर कार्यों की संगति दिखाने और युद्ध-वर्णन से उपन्यासकार की यह कला विशेष रूप से प्रभावित करती है। हनुमान का प्रथम सागर-संतरण चित्रित करते समय उसकी कलम का यह कौशल देखा जा सकता है, "महेन्द्र पर्वत पर खड़े पवन कुमार ने पूर्वाभिमुख हो पिता पवनदेव को एक बार पुनः प्रणाम निवेदित किया और जैसे पूर्णिमा की रात में ज्वार-जगा सागर फूलने लगता है वैसे ही उनका शरीर वृद्धिशील हो, दीर्घ-काय हो आया। देखते-देखते पेट किसी गिरि-गह्वर की तरह पिचक गया और वक्ष-प्रदेश उन्नत और प्रशस्त हो आया। पूरे शरीर के रोम खड़े हो कर वृक्षों की तरह लहरा आए और आँखों की पलकों और श्रवण-पार्श्वों के केश हस्त प्रमाण हो वायु से दोलायमान हो आए। भुजाओं की मासपेशियाँ तन आई और जांघों ने फैल कर विशाल प्रस्तर-खम्भों का रूप ले लिया। अन्दर भर रहे साहस और संकल्प के फलस्वरूप लगातार ऐंठते जा रहे लांगूल (पूंछ) को उन्होंने सिर के ऊपर फेंक किस विजय-ध्वज की तरह लहरा दिया।"[9] हनुमान के छलांग लगाने के दृश्य की परिकल्पना, उससे घबरा कर कंदराओं में छिपे जीव-जन्तुओं, कीट-व्यालों आदि का भयाक्रांत होकर बिलबिलाना, उनकी गति से 'सागर और आकाश के बीच बिछे मेघ-खण्डों' के चूर्ण-चूर्ण होने, समुद्र में तूफान की सृष्टि, "समुद्र की दयनीय हालत", आदि के सुदीर्घ वर्णन भी पाठक को अपने आकर्षण में बाँध ले जाते हैं। ऐसे ही वर्णनों के प्रभाव से कथा में रोचकता और औतसुक्य की वृद्धि हुई है। संजीवनी-बूटी लाने आदि का दृश्य भी लेखक कल्पना के बल पर बहुत सुन्दर रूप में खड़ा कर सका है। इसी प्रकार मेघनाथ-लक्ष्मण, राम-कुंभकर्ण, राम-रावण आदि के मध्य हुए युद्ध तथा अहिरावण द्वारा राम-लक्ष्मण के हरण प्रसंगों की दृश्य-नियोजनाओं में उपन्यासकार की इस क्षमता की दाद देनी पड़ती है। कहना न होगा कि इन पौराणिक कथाओं के अतिरंजनापूर्ण वर्णनों को उपन्यासकार ने अपनी कल्पना में पहले घण्टों-दिनों बसाया होगा, बिठाया होगा, तब उनकी इतनी सुन्दर और पर्याप्त सीमा तक युग-ग्राह्य प्रस्तुति करने में समर्थ हुआ होगा।

कथानक के बीच में उपन्यासकार ने विभिन्न हनुमान मन्दिरों के महात्म्य और इतिहास-वर्णन का अवसर खोज निकाला है। मन्दिरों के निर्माण से लेकर वर्तमान स्वरूप तक आने की एक पूरी सांस्कृतिक यात्रा तय करता हुआ लेखक अपने पाठक को महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। विभिन्न मन्दिरों के महात्म्य और इतिहास को प्रस्तुत करने में हनुमान के मुख से लेखक का मंतव्य ही इस प्रकार प्रकट होता है, "मेरा ध्येय तो केवल इतना ही कि इस बहाने ही सही आप अपने आर्यवर्त्त को इस छोर से उस छोर तक जान तो लें। किसी भी राष्ट्र के ध्रुवीकरण का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं हो सकता कि उसके वासी एक-दूसरे के क्षेत्र प्रदेश को निकटता से जानें समझें।"[10] काशी के संकट-मोचन, अयोध्या की हनुमान-गढ़ी, लखनऊ में अलीगंज का हनुमान-मन्दिर, बिहार में सासाराम के हनुमान मन्दिर, आदि का सविस्तार चित्रण करता हुआ लेखक हिन्दू-मुस्लिम के बीच विद्यमान धार्मिक सहिष्णुता और सौहार्द के अवसर भी खोज निकालता है। भारत के ही नहीं अपितु वृहत्तर भारत के विभिन्न देशों-इंडोनेशिया, लाओस, थाइलैंड, बर्मा, मलेशिया, कम्बोडिया, आदि मॉरिशस के त्रिओले नामक स्थान पर बने हनुमान मंदिरों का परिचय देता हुआ लेखक समस्त विश्व के हनुमान-मंदिरों से परिचित करा देता है। यद्यपि यह समस्त प्रसंग कथा-प्रवाह पर कुछ भारी पड़ता है, 46वें अध्याय से लेकर 50वें

अध्याय तक मंदिरों का ही वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत महत्त्व का है। हां! हरिद्वार के विशाल प्रतिमा वाले भव्य हनुमान-मन्दिर का वर्णन लेखक की दृष्टि से न जाने कैसे छूट गया है, यद्यपि उसका इतिहास अधिक पुराना नहीं है, कदाचित् दस-पांच वर्षों का ही हो। इसी प्रकार लेखक ने राम-कथा के प्रसिद्ध कवियों बाल्मीकि और तुलसी, के लोकप्रिय कथनों को कथा में अनुस्यूत करने के अवसर यत्र-तत्र बड़े कौशल से खोज निकाले हैं।

'पवन-पुत्र' का उपन्यासकार बारम्बार अपने पुराख्यान से नूतन और आधुनिक संदर्भों में लौटता है। इस प्रकार के कितने ही उदाहरण उपन्यास से प्रस्तुत किये जा सकते हैं प्राचीन ग्रन्थों के साथ-साथ वह राजगोपालाचार्य की पुस्तक की कहानी के आधार पर सूर्य-घट-न्याय से भगवान के सर्वव्यापी रूप को सिद्ध करता है, "हाँ तो मैं इस कहानी के माध्यम से यह कह रहा था कि देवी-देवता की सर्वव्यापकता उनका एक अत्यंत साधारण गुण है—उनका सामान्य धर्म सहज विशेषता। मैं अपने को देवता नहीं मानता, पर आपने मुझे बना दिया है तो मैं भी वह बन ही गया हूँ। जिसमें जिन गुणों को आरोपित कर दिया जाये, उसमें वे देर-सवेर आ ही जाते हैं : संकल्प का बहुत महत्व है······लाख-लाख, भक्तों के मनोभाव ने इस वानर में देवत्व भर दिया तो इसमें आश्चर्य क्या ?"[11] कनाट प्लेस के हनुमान-मन्दिर का महत्व भी इसी दृष्टि से लेखक ने बताया है।

'धर्म-निरपेक्षता' आधुनिक राष्ट्रों का जीवन-दर्शन बन गया है। लेखक उसकी भी व्याख्या आस्था के धरातल से करता हुआ वर्तमान को दृष्टि देने का कार्य करता है।[13] इस आस्थापूर्ण दृष्टि से वह प्रार्थना, आर्त्त पुकार, की व्याख्या करता हुआ मनुष्य की ईश्वर के प्रति आस्था का सम्बल प्रदान करता है, "युगों में कभी-कभार किसी गजराज, किसी प्रह्लाद अथवा किसी ध्रुव की पुकार पर पसीज आती है उस करुणा-सागर की असीम करुणा और अघटनीय घट जाता है। पुकारते तो अनेक हैं पर किसी-किसी पुकार में जब प्राणों की संपूर्ण ऊष्मा, अन्तर की सारी छटापटाहट सिमट आती है तो वह पुकार प्रकृति के सारे विधि-विधानों को निरस्त कर असम्भव को संभव कर देती है।"[14] इसी प्रकार इच्छा-शक्ति, कर्म, श्रद्धा-विश्वास, भय, आदि के प्रश्नों को लेखक ने पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित किया है, इस रूप में कि इन सबके प्रति आस्था जगती है, क्षीण नहीं होती।

वानर-जाति का डार्विन के विकासवाद के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक विश्लेषण, वर्ण-जाति व्यवस्था का विवेचन, राक्षसों को डायनर जीव के आधार पर सत्य प्रतिपादित करना, आदि ऐसे प्रसंग नियोजित किये गये हैं कि पौराणिक कथाओं, विश्वासों आदि की सत्यता की प्रतीति होती है। आधुनिक युग बोध के संदर्भ में अपनी कथा की प्रस्तुति करता हुआ उपन्यासकार इन सब प्रश्नों और चिंताओं में जूझता है। अपनी कथा को आधुनिक जीवन-दृष्टि के अनुरूप ढालने के क्रम में लेखक ने मूल कथा-मिथक को बहुत सशक्त रूप में नया मोड़ दिया है। मिथक की शास्त्रीय शब्दावली में यह मिथक का सार्थक रूप में टूटना या आगे बढ़ना कहा जा सकता है। वर्तमान युग-दृष्टि के अनुसार लेखक ने राम से युद्ध का दर्शन प्रस्तुत कराया है। यहां 'पवन पुत्र' के राम पारंपरिक राम से पूर्णतया भिन्न धरातल पर खड़े हुए हैं। राम द्वारा जिस प्रकार युद्ध की निंदा करायी गयी है, वह सहज ही दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' के युद्ध-दर्शन की स्मृति दिलाता है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद अस्त्र-शस्त्रों की बढ़ती होड़ और उनके विनाशकारी अकल्पनीय दुष्परिणामों से भयाक्रांत विश्व में युद्ध की सार्थकता या औचित्य सिद्ध ही नहीं किया जा सकता। राम इसी दृष्टि से युद्ध के विषय में अपना मत व्यक्त करते हैं,"...समर नहीं है मान्य श्री राम को मान लिया। होना भी नहीं चाहिए। यह पशु प्रवृत्ति है, शांति और मैत्री मानवीय भाव। आप युद्ध नहीं यज्ञ का आयोजन करें.....अश्वमेध यज्ञ का।"[16]

रामकथा के आर्ष-ग्रन्थों को आधार-सामग्री बनाने के साथ-साथ जनश्रुतियों, लोक-कथाओं से प्रयोग द्वारा भी 'पवन पुत्र' की कथा को रोचकता प्रदान की गयी है, यथा हनुमान के चुटकी बजाने और श्री राम की जम्हाई के न रुकने का प्रसंग कथा को मनोरम रंग दे देता है। इसी प्रकार गिलहरी के शरीर पर धारियों की रेखा पड़ जाने (पृ० 159) सागर पर सेतु-बंधन के समय गिरिराज का ब्रजभूमि में ही आरोपण (पृ० 158) रामेश्वर से पहले हनुमदीश्वर की पूजा का विधान (पृ० 160) जनश्रुतियों पर आधारित ऐसे ही रोचक प्रसंग हैं।

जहाँ इन सभी दृष्टियों से 'पवन पुत्र' उपन्यास समकालीन लेखन में विशेष महत्वपूर्ण हो गया है, उसके व्यापक कथा-परिदृश्य में शिल्प की दृष्टि से एक स्थान पर व्यतिक्रम भी आया है। उपन्यास की सारी कथा आत्मकथात्मक शैली में कही गयी है, हनुमान स्वयं अपनी जीवन-कथा, जन्म से लेकर जीवन की संध्या तक की, सुनाते चलते हैं। इस रूप में सारी कथा का रूप आत्मकथात्मक, "मैं" शैली में ही है किन्तु अठारहवें अध्याय की पूरी कथा तृतीय पुरुष की शैली में वर्णित है जो उपन्यास के पूरे शिल्प से अपनी संगति नहीं बिठा पाती।

"दूसरे, पूरे उपन्यास में भाषा का अत्यन्त गहन-गम्भीर और प्रवाहपूर्ण रूप अपनी सहजता में आया है। शब्द-चयन का सौंदर्य स्थान-स्थान पर देखते ही बनता है, यथा—'कांतार' के साथ 'कठिन' का प्रयोग भाषा में एक गहरी अर्थवत्ता दे जाता है। "हम तो भटक-भटक कर ही मर जायेंगे। इस कठिन कांतार में"—(पृ० 101) अंगद की गति की क्षिप्रता को "लपके" की ध्वनि रूपायित कर देती है, "युवराज अंगद ने कहा था और किसी भारी चट्टान की खोज में लपके थे।" कहीं-कहीं भाषा का रूप कथा-भाषा के जीवन-धर्मी रंग में रंगा हुआ उसे बहुत स्वाभाविकता देता है, "समय बहुत आराम से कटने लगा गंध-मादन पर। मेरा भी, तपाचारियों, व्रतधारियों का भी। मैं उनके उग्र तप से आनंदित था। मेरी सेवा से वे संतुष्ट थे" (पृ० 21)—मानों हनुमान सहज रूप में बतिया रहे हों। किन्तु इस भाषा प्रवाह में रसात्मक स्तर पर बाधा वहाँ पड़ती है जहां बारम्बार उर्दू के शब्दों का बेहिचक प्रयोग हुआ है। उर्दू शब्दों के प्रयोग से वह भी बहुप्रचलित शब्दों के प्रयोग से, हमें कोई गुरेज नहीं है किन्तु मिथकीय कथा का यह पौराणिक पात्र और उसका संपूर्ण परिवेश, तत्कालीन देश-काल, शब्द प्रयोग की इस प्रवृत्ति को पचा नहीं सकता। 'अवसाद की गहरी वादियों' (पृ० 123) "उपदेश देने का कोई शौक नहीं" (पृ० 143), "यह हमारी अंतिम मुलाकात थी" (पृ० 206) "मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता" (पृ० 297) "हमारी हालत खराब रही" (पृ० 301), "मुझे अफसोस हुआ" (पृ० 325),

जैसे प्रयोग हनुमान के मुख से बड़े अटपटे लगते हैं। शिल्प और भाषा स्तर पर इन दो छोटी-सी भूलों के अतिरिक्त सम्पूर्ण उपन्यास पूरी तरह अपने रस में बाँधे रखता है।

पवन-पुत्र हनुमान को केन्द्र में रखकर राम-कथा के मिथक की युगानुकूल बड़ी सार्थक प्रस्तुति विवेच्य उपन्यास में हुई है। समकालीन उपन्यासों में सांस्कृतिक दृष्टि से 'पवन-पुत्र' का अक्षुण्ण महत्व है। ☐

संदर्भ :—

1. "The Poet is particularly apt to recognise resemblances which are hidden, inexplicable and merely felt. He is quick to feel the invisible links."
2. "Myth is not some thing freely invented but a necessary mode of feeling and belief which appears in the course of history and seizes upon human consciousness." —David Bidney, 'Myth, symbolism and truth' —"Myth : A symposium" —Edited by Thomas A. Sebeok.
3. "Paradoxically enough, one of the main marks of 'modernism' in literature is often a lively interest in the past for its own sake," G.S. Fraser, 'Modern writer and His World.' Page 3.
4. "पवनपुत्र," "अपनी ओर से" (भूमिका)
5. वही,
6. "पवन पुत्र" पृ० 11
7. वही, पृ० 43
8. वही, पृ० 180
9. वही, पृ० 106-107
10. वही, पृ० 240
11. वही, अध्याय तैंतालीस, पृ० 211
12. वही, पृ० 237
13. वही, पृ० 226-227
14. वही, पृ० 230
15. वही, पृ० 317, द्रष्टव्य पृ० 313-316

कहानी

पुनर्योग

□ वेदराही

निरीक्षण करते हुए डॉक्टर ने बड़े सहज भाव से कहा, "ज्यों-ज्यों उमर बढ़ेगी ऐसा कुछ न कुछ लगा ही रहेगा।" यह सुन कर अनायास वह उद्विग्न हो गई। बेचैनी से हाथों-पावों में छटपटाहट होने लगी। दम घुटने लगा। डॉक्टर कहे जा रहा था, "ब्लड प्रैशर ठीक रखने के लिये ज़रूरी है आप तनावों से दूर रहें।" अपनी बात कहने के बाद अगर डॉक्टर दोबारा देखता तो हैरान रह जाता कि इतनी जल्दी ब्लड प्रैशर इतना कैसे बढ़ गया।

उस दिन दांतों के डॉक्टर ने भी कुछ ऐसी ही बात की थी, "अब आपको हर साल दांतों की सफाई करवा लेनी चाहिए।"

वह जल्दी से क्लिनिक के बाहर आकर खड़ी हो गई, उसे याद आया उसकी उमर सैंतीस साल हो गई है, मगर डॉक्टर को कैसे पता चला? उसे लगा होगा कि मैं सैंतीस की दिखती हूं, तभी तो कहा। वह इस शॉक से सम्भल नहीं पा रही थी। सैंतीस तक आ गई मगर वहां नहीं पहुंची, जहां पहुंचने के लिए यह सफर शुरू किया था।

मनाली से वहां खड़े नहीं रहा गया। वैसे भी आज उसके पास समय नहीं। शाम चार बजे की गाड़ी से उसकी बेटी बबली आ रही है, और उसके आने से पहले कितने काम करने हैं। एक आटो रिक्शा रोक कर वह उसमें बैठ गई, ड्राईवर को वर्सोवा की तरफ चलने को कहा।

ऑटो की रफ़्तार तेज थी। मनाली के बाल उड़ रहे थे। उसने बालों की लट कान के पीछे करनी चाही। याद आया कानों के ऊपर बालों में सफेदी आ चुकी है, और मेंहदी लगाए भी दो महीने हो गए हैं। सम्भव है डाक्टर ने इन सफ़ेद बालों को देख कर ही कहा हो, "ज्यों-ज्यों उमर बढ़ेगी, ऐसा कुछ न कुछ लगा ही रहेगा।"

"यहीं रोक दो" उसने कहा।

आटोरिक्शा ठीक ब्यूटी-पार्लर के सामने रुक गया।

मेंहदी लगवाने वह यहीं आती है। आज पहली बार मेंहदी लगवाने के साथ ही 'फेशल' भी करवा लिया। चेहरे पर एक चमक सी आ गई। शीशे में अपने आप को देख कर मुस्कराने लगी। पैसे देकर जब बाहर की तरफ कदम बढ़ाया तो 'फेशल' करने वाली उस लड़की ने कहा, "अब आपको दो महीनों में एक बार 'फेशल' ज़रूर करवा लेना चाहिए और मेंहदी तो हर महीने लगवानी चाहिए, नहीं तो सफेद बाल दिखने लगेंगे।" यह बात सुन कर बाहर आते-आते फिर उद्विग्न हो गई। दिल किसी भारी बोझ के नीचे दबने लगा। टांगें जैसे शक्तिहीन हो गईं, सामने टैक्सी खड़ी थी जल्दी से उस में बैठ गई। घर दूर नहीं था, इसलिए टैक्सी वाले ने जाने से इंकार कर दिया। वह खिन्न होकर बाहर निकल आई, और पैदल ही घर की तरफ चल दी।

घर आकर वह कितनी देर तक लेटी रही। उससे कुछ हो नहीं पा रहा था। पांच साल के बाद बबली आज पहली बार उसके पास आ रही है। सुबह तक वह कितनी खुश थी। वह नौ बरस की थी जब आखिरी बार उसे देखा था। जब पति से झगड़ा करके वह बम्बई आ गई थी उसने पति पर दबाव डालना चाहा था कि वह उसके साथ बम्बई चले, जहां वह बहुत नाम और पैसा कमाना चाहती थी। मगर पति ने उसका साथ देने से साफ इन्कार कर दिया था। तब वह अकेली ही चली आई थी अपने सपनों को पूरा करने, लेकिन——कितना लम्बा और कड़वा इतिहास है इन पांच सालों का।

बबली क्या देखेगी आकर ? बढ़ती हुई उमर का बोझ उठाए हुए मैं—अकेली, इतने बड़े शहर में किस विवशता में जी रही हूं ? उसे दुख नहीं होगा ? क्या कहेगी वह वापस जाकर।

वह उठ कर बैठ गई। दिल कड़ा करने की कोशिश करने लगी। बबली आज शाम को आएगी, और परसों शाम तक चली जाएगी। दो ही दिन तो उसे यहां रहना है। इन दो दिनों में अगर मैं उसे खुश नज़र आऊंगी, हंसती-मुस्कराती दिखाई दूंगी तो वह कितनी खुश होगी। उसे कभी कुछ दिया नहीं, इतनी सी खुशी भी नहीं दे सकती क्या ?

यह सोच कर उसने फुरती से काम करना शुरू किया। जो चीज़ें वह लेती आई थी, उन्हें ढंग से डिब्बों में बंद करके रखा। कमरे की सफाई की। गद्दियों के गिलाफ बदले। फर्श पर गीला कपड़ा फेरा। बाथरूम को फ़िनायल से साफ किया। फिर नहा-धोकर उसने कपड़े बदले, ताज़ा दम हो गई। थोड़े चावल उबाले। रात की दाल थी, दही था, खा कर जब वह तैयार हुई तो अढाई बजे थे। चलना चाहिए, उसने सोचा। शीशे में फिर आखिरी बार देखा बाल बहुत अच्छे सेट हुए थे ; चेहरे पर हलकी लाली थी, जो 'फेशल' के कारण थी, उसे अपना चेहरा अच्छा लगा।

अलमारी खोल कर उसने तीन हज़ार रुपयों की गड्डी निकाली। उसमें से एक हज़ार रुपया उसने अपने पर्स में रखा, बाकी रुपए वहीं रख दिए, यह रुपए उसने उधार लिए हैं, बबली के लिए। वह चाहती है इन दो दिनों में वह बबली को खूब सैर कराए, खिलाए-पिलाए, ताकि वापस जाकर वह सब को कह सके कि उसकी मम्मी वहां बड़े अच्छे ढंग से रहती है, और उसे अपने पीछे छोड़े हुए संसार का कोई पछतावा नहीं।

वह ऑटो में अंधेरी स्टेशन पहुंची, वहां से ट्रेन में बैठ कर बम्बे-सेंट्रल। पुल क्रास करके वह उस तरफ आ गई, जहां दिल्ली से गाड़ी आने वाली थी। अभी दस मिनट बाकी थे। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, बबली को देखने की उत्कंठा बढ़ती जा रही थी।

दूर से गाड़ी आती दिखाई दी तो प्लेटफार्म पर हलचल सी मच गई। एक कुली से पूछ कर मनाली जल्दी-जल्दी उस जगह पहुंच गई जहां एस वन डिब्बा रुकेगा। बबली ने उसे सब लिख दिया था। कुल मिला कर कोई पच्चीस लड़कियां होंगी जो अपनी टीचर के साथ बम्बई और गोआ के टूअर पर आ रही थीं।

धीरे-धीरे गाड़ी उसके सामने से आगे बढ़ रही थी। अचानक उसे आवाज़ सुनाई दी, "मम्मी"! उसने देखा थोड़ी दूर आगे जाकर जो डिब्बा खड़ा हो गया है, उसके दरवाज़े पर बबली उसे देख कर हाथ हिला रही है। उसने फिर पुकारा 'मम्मी'। मनाली हैरान है। यह बबली है? इतनी लम्बी? इतनी आकर्षक? हां बबली ही तो है। वह भागती हुई उसकी तरफ आ रही है। मनाली भी आगे बढ़ी। उसने बबली को गले से लगा लिया। बबली ने ज़्यादा ज़ोर से उसे बांहों में भरा हुआ था।

दोनों का क़द एक ही जैसा था। पांच फुट सात इंच। जब दोनों एक दूसरे से अलग हुईं तो मनाली ने ध्यान से बबली को देखा। बिल्कुल वैसी ही जैसी वह खुद आज से बीस बरस पहले थी। स्तब्ध रह गई थी वह। नौ बरस की नन्हीं सी चुहिया जैसी लड़की जिसे छोड़ कर वह चली आई थी, एक बेहद खूबसूरत लड़की में बदल चुकी थी, उसी समय बाकी सब लड़कियां भी उन्हीं के आस-पास आकर खड़ी हो गईं: दो-चार लड़कियों को बबली ने मनाली से मिलवाया। उन की टीचर भी वहीं आ गई। "यह मेरी मम्मी है" बबली ने टीचर से कहा। टीचर, जो खुद भी कोई बड़ी उमर की नहीं थी, बोली, "वह तो देखने से ही लगता है।" फिर उसने मनाली से कहा, "आंटी आप बबली को अपने साथ ले जाएंगी?"

"हां" मनाली ने जवाब दिया। वह टीचर के आंटी सम्बोधन से अन्दर ही अन्दर आहत हुई थी।

टीचर ने कहा, "हम सब के लिए स्टेशन के सामने ही किसी गेस्ट हाऊस में ठहरने का प्रबन्ध किया गया है। आप मुझे फोन नम्बर दे दीजिए, मैं आपको फोन पर एड्रेस बता दूंगी।"

"मेरे पास फोन नहीं है" मनाली को यह कहते हुए थोड़ा संकोच हुआ, बबली और उसकी फ्रेंडस को उसकी बात सुन कर अजीब सा लगा।

"तो फिर मैं स्टेशन मास्टर के ऑफिस में पता छोड़ दूंगी, आप उन से सम्पर्क कर लें।"

"ठीक है।" मनाली बबली को लेकर चल दी। सामान ज़्यादा नहीं था। दो बैग थे। दोनों ने एक-एक उठा लिया था। बाहर आकर दोनों टैक्सी में बैठ गईं। टैक्सी घर की ओर चल दी। रास्ते में समुन्दर नजर आया तो बबली ताली बजा कर चिल्ला उठी, "कितना बड़ा है, कितना अच्छा।" वह मनाली से सट कर बैठी हुई थी। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोली, "मम्मी मेरी सारी फ्रेंडस तुम्हें देखना चाहती थीं। उन सबको पता है तुम फिल्मों में काम करती हो, और माडलिंग भी। मैंने सब को तुम्हारा वह चाय के ऐड वाला फोटो दिखाया था।"

टैक्सी ड्राइवर ने गर्दन को जरा सा पीछे घुमाया और मनाली की तरफ देखा। मनाली को न जाने क्यों शर्मिदगी सी हुई। वह सकुचा रही थी। बबली की बातों का

खुलापन, उसके चेहरे की ताज़गी, उसके शरीर का इकहरापन सब उसके अस्तित्व को मानों तुच्छता का एहसास करा रहे थे। बबली से मिलने का सारा उत्साह मर चुका था। वह सोचने लगी थी बबली नहीं आती तो अच्छा था।

"मम्मी तुम्हारी उस फिल्म का क्या हुआ जिसमें तुम हीरोईन का काम कर रही हो ?"

"बंद पड़ी है सालों से।"

"क्यों ?"

"प्रोड्यूसर और फाईनेंसर में कोई झगड़ा हो गया था इसलिए मनाली को घबराहट सी होने लगी। उसे लग रहा था ड्राईवर उनकी बातें सुन कर मन ही मन हंस रहा होगा। वह चाहती थी बबली नहीं बोले। मगर वह कैसे रोके उसे ?

"तुम अपनी कार क्यों नहीं लायीं मम्मी ?"

"कार ? उसका एक्सीडेंट हो गया था।"

"कब ?"

"कोई एक महीना हो गया; काफी टूट गई। बनने में अभी कुछ और दिन लगेंगे।" जिस सहजता और सफाई से उसने झूठ बोला, उस पर उसे खुद भी आश्चर्य हुआ। बबली को बात करने से रोकने के लिए उसने खुद बात चलाई, "तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है ?"

"मैं हमेशा टाप पर रहती हूं।"

"परीक्षा कब है ?"

"अप्रैल में।"

"कोई ट्यूशन रखी है क्या ?

"डैडी बहुत अच्छा पढ़ाते हैं मुझे।"

मनाली चुप हो गई। बबली चुप का कारण जान गई। मगर खुद चुप रहना उसके लिए सम्भव नहीं था। "मम्मी मैंने अपने कमरे में तुम्हारे सभी ऐड्स के फोटो चिपका कर रखे हैं। दो दीवारें तो बिलकल भरी हुई हैं उन फोटोज़ से। पढ़ते वक्त भी मेरी आंखों के सामने रहते हैं।"

"फिर तुम पढ़ाई क्या करती होगी ?"

"पढ़ाई में कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं तो टी० वी० देखते हुए भी पढ़ती रहती हूं।"

"फिर तो तुम झूठ बोल रही हो कि तुम टॉप पर रहती हो।"

"कसम से मम्मी," बबली ने गले पर हाथ रखा। उसके भोलेपन पर मनाली को हंसी आ गई। उसने उसके सिर को सहलाया।

घर के बाहर टैक्सी ने उतारा। दोनों ने फिर एक-एक बैग उठा लिया और सीढ़ियां चढ़ने लगीं। पड़ोस की एक औरत नीचे उतर रही थी। उसने उन दोनों को देखा तो मुस्कराते हुए बोली, "तुम्हारी बहन है कि बेटी ? बहुत सुन्दर है।"

"मैं इन की बेटी हूं" बबली ने बड़े गर्व से कहा। मनाली ने सोचा काश बबली कह देती कि बहन हूं।

कमरे में पहुंच कर बबली ने सब से पहला सवाल किया, "तुम यहां रहती हो मम्मी ? इस छोटे से कमरे में।"

"अरे बम्बई में इतनी सी जगह भी कहां मिलती है।"

"इस किचन में तुम खड़ी कैसे रहती हो ?"

"मुझे इसके अन्दर रहना ही कितनी देर होता है ? चाय-वाय बना ली बस। कभी-कभार घर पर होती हूं तो दाल-चावल या कुछ ऐसा बना लिया; नहीं तो बाहर ही खाती हूं। कभी फैक्ट्री में, कभी दुकान पर, कभी किसी के आफिस में।"

थोड़ी देर बाद, कुछ और नहीं सूझा तो बबली फिर पूछ बैठी, "मम्मी तुम ने माडलिंग क्यों छोड़ दी।"

"इस काम में ऐसा ही होता है, कोई भी मॉडल ज्यादा दिनों तक नहीं चलता, मजबूर होकर मैंने गार्मेन्टस का काम शुरू कर दिया है। एक बुटिक खोलने की सोच रही हूं। अच्छा चल तू नहा ले। मैं तेरे लिए कुछ बनाती हूं। दूध पिएगी न ?"

"दूध ? बबली ने चीख कर कहा, "क्या कह रही हो मम्मी ? दूध से तो मुझे एलर्जी है, मैं काफी पिऊंगी।"

बबली ने नहा लिया। फिर दोनों ने एक साथ बैठ कर कॉफी पी। फिर समुन्दर के किनारे चलने को तैयार होने लगीं। "खाना भी कहीं बाहर होटल में खा कर आएंगे।" मनाली ने कहा। बबली ने अपनी मिडी निकाली गुलाबी रंग की। बहुत सुन्दर फूल बने हुए थे उस पर, वह एक राजकुमारी सी लग रही थी। मनाली ने हलके नीले रंग की वह साड़ी पहनी जो उसने आज तक कहीं नहीं पहनी थी, यह सोच कर कि यह किसी खास मौके पर पहनूंगी।

जुहू पहुंच कर पहले उन्होंने भेल-पूरी और आलू की टिकियां खाईं। कच्चा नारियल पिया। फिर बबली ने एक बॉल खरीदा, और उससे खेलने लगी। इतनी लम्बी लड़की इतने छोटे से बॉल के साथ खेलते हुए अजीब सी लग रही थी। एक बॉल मनाली की तरफ चला गया। मनाली ने उठा कर बबली की तरफ फेंका। तब बबली ने जानबूझ कर बॉल उसकी तरफ फेंका। दोनों खेलने लगीं। लोगों की भीड़ में उन्हें कोई नहीं देख रहा था। जब वे वहां से चलने लगीं तो मनाली के मुंह से निकल गया, "आज मैं कितनी खुश हूं।" बबली ध्यान से उसकी तरफ देखने लगी।

खाना खाने मनाली बबली को एक बहुत अच्छे और महंगे रेस्टोरेन्ट में ले गई। इस से पहले बबली कभी इतने बढ़िया रेस्टोरेन्ट में नहीं गई थी। उसे खाना खाते हुए लग रहा था जैसे वह किसी और ही दुनिया में पहुंच गई है।

रात को दीवान पर दोनों एक साथ सो गईं। मनाली ने आज खादी की वह मोटी नाईटी पहनी थी, जो कभी मजबूरी में पहना करती थी। अचानक आधी रात को उसकी नींद खुल गई। उसने देखा बबली की एक टांग उसके पेट पर थी, और वह उससे बिल्कुल सटकर सोई हुई थी। उसने अपने आपको सीधा किया, और बबली के बालों पर प्यार से हाथ फेरने लगी फिर उसने उसे चूम लिया।

दूसरे दिन मनाली ने नए फैशन का सूट पहना, नए ढंग के दुपट्टे के साथ। बबली को उसने ब्लू जीन और सफ़ेद फूलदार टॉप पहनने के लिए कहा। बाल उसने खुले छोड़ दिए

थे । बाहर जाने से पहले मनाली ने उसे देखा तो देखती रह गई । पल भर के लिए उसे लगा वह खुद जीन पहने खड़ी है । बबली बिल्कुल वैसे ही बालों में कंघी फेर रही थी, जैसे वह खुद फेरती है, एक तरफ को झुक कर, थोड़ा-थोड़ा झटका देकर ।

अचानक बबली ने मनाली की तरफ देखा, और बोली, मम्मी मुझे शूटिंग नहीं दिखाओगी ?" मनाली को सूझा नहीं क्या जवाब दे. बौखला सी गई; "तुम्हारे पास आज ही का दिन है । अगर शूटिंग देखने जाओगी तो फिर बम्बई नहीं देख सकोगी ।"

"बम्बई फिर देख लूंगी । आज मैं शूटिंग देखना चाहती हूं ।"

"बहुत बोर होता है शूटिंग देखना ।"

"नहीं मुझे देखना है ।"

"अच्छा मैं रास्ते में कहीं से फोन कर के पता लगाऊंगी; अगर किसी जान-पहचान के प्रोड्यूसर की शूटिंग हुई तो दिखा दूंगी । दरअसल बिना किसी परिचय के शूटिंग देखने का कोई फ़ायदा नहीं ।" बबली ने बात मान ली । मनाली ने शुक्र किया । वह नहीं चाहती कि फिल्म वालों को पता लगे कि वह इतनी बड़ी लड़की की मां है, अगर वे जान गए तो संघर्ष और भी लम्बा हो जाएगा । अभी उसने हार नहीं मानी है ।

दोनों घर से बाहर निकलीं । रास्ते में मनाली ने फोन किया, मगर किसी प्रोड्यूसर को नहीं, अपनी एक फ्रेंड को । वापस आकर टैक्सी में बैठी बबली से कह दिया, "शूटिंग तो नहीं है ।" टैक्सी चल पड़ी । मनाली ने देखा बबली के चेहरे पर निराशा थी ।

"मम्मी तुम ने अपना फ़ोन क्यों नहीं लगवाया ? "

"अभी क्या बताऊं क्यों नहीं लगवाया । अकेली जान हूं । कहां-कहां सिर मारती फिरूं, तुम्हें पता है फ़ोन लग जाए तो भी सौ झंझट सामने आ जाते हैं ।" फिर झूठ बोला है उसने मगर यह देख कर तसल्ली हुई है कि बबली ने उसकी बात पर विश्वास किया है । बबली को शायद याद आ गया है कि दिल्ली में उनके घर जो फ़ोन है, वह अकसर खराब रहता है और डैडी उसकी मरम्मत के लिए भाग-दौड़ करते ही रहते हैं ।

'गेटवे ऑफ इण्डिया' पर जब टैक्सी रुकी तो पहले बबली उतरी, फिर मनाली । पर्स खोल कर मनाली ने टैक्सी ड्राईवर को सौ का नोट दिया जब छुट्टा लेकर पर्स में डाला और मुड़ी तो देखा बबली वहां नहीं थी । इर्द-गिर्द लोगों की भीड़ थी । वह इधर-उधर देखते हुए आगे बढ़ गई । पग-पग उसका दिल डूबता जा रहा था । 'बबली', 'बबली' पुकारते हुए वह तेज़ी से भीड़ के आर-पार होने लगी । एका-एक मुस्कराते हुए बबली सामने आ गई तो मनाली के आंसू निकल आए, "कहां चली गई थी तू" कहते हुए उसने बबली को सीने से लगा लिया ।

"मैं जानबूझ कर तुम्हें छका रही थी ।"

"बड़ी खराब है तू"

"मैं बराबर तुम्हारे पीछे-पीछे थी ।"

"बेहाल कर दिया तूने मुझे ।" मनाली ने आंसू पोंछते हुए कहा ।

लंच में समुन्दर की सैर करने के बाद मनाली बबली को रेडीमेड गारमेंट्स की बहुत बड़ी दुकान पर ले गई । वह खुद भी उस दुकान से माल का आर्डर लेकर एक फैक्ट्री में नए-

नए डिजाइनों के कपड़े बनवाती है, और यहीं सप्लाई करती है। यहां उसका उधार-खाता भी चलता है। बबली ने तीन सूट पसंद किए, उसने तीनों उसे ले दिए।

रात को वे 'ताज' में खाना खाने पहुंची। बबली जिस तरफ भी नज़र उठाती, बस देखती रह जाती। ऐसा शानदार माहौल उसने पहले कभी नहीं देखा था। खाना खाते हुए भी जैसे कहीं हवा में उड़ रही थी। अचानक उसके मुंह से निकला, "मम्मी अगर मैं तुम्हारे पास रहूं तो ?" मनाली चौंक कर उसकी तरफ देखने लगी. "क्या मतलब ?"

"मैं डैडी को मना लूंगी कि वह मुझे तुम्हारे पास ही रहने दें।"

"नहीं, नहीं यह ठीक नहीं, उन्हें तकलीफ होगी।"

"मेरे बगैर उन्हें क्या तकलीफ होगी ?"

"तुम नहीं समझ सकती। जब तक तुम्हारी पढ़ाई पूरी नहीं हो जाती, ऐसी बात सोचना भी नहीं।"

"पढ़ाई तो यहां भी कर सकती हूं।"

"यहां की और वहां की पढ़ाई में बहुत फ़र्क है।"

"मैं सब ठीक कर लूंगी, मुझे तुम्हारे पास रहना है।"

"नहीं यह नहीं हो सकता। कल चुपचाप अपनी फ्रेंड्स के साथ चली जाओ। दोबारा मुझ से यह बात नहीं कहना।"

बबली ने मुंह फुला लिया और चुपचाप बैठी रही। उसके बाद उसने कुछ नहीं खाया। मगर मनाली खाती रही। बिना उसकी तरफ देखे उसका दिल कांप रहा था। ऐसा न हो बबली इस बात पर अड़ जाए। वह बात करने से भी डर रही थी। घर आने तक दोनों वैसे ही चुप रही। सोने के समय भी कोई कुछ नहीं बोली।

लेकिन दोनों को नींद नहीं आ रही थीं। अंधेरे में एक-दूसरे की तरफ देखे बगैर दोनों को एक-दूसरे के जागने का एहसास था। मनाली ने धीरे से अपना दायां हाथ बबली के माथे पर रख दिया। बबली ने दूसरी तरफ करवट बदल ली। मनाली जान गई वह अभी तक नाराज़ है। ठीक भी तो है, वह सोचने लगी, इसमें उसका कोई कसूर नहीं। इतने सालों के बाद मिली है, बिलकुल नेचुरल बात है कि उसका मन मेरे ही पास रहने को करे, मैं मां हूं उसकी। उसे क्या पता कि मैं उसे क्यों अपनी दुनिया में झांकने नहीं देना चाहती; नहीं चाहती कि वह मेरी असफलताओं की कहानी जान सके। एक भरा-पूरा घर छोड़ कर मैं घाटे में रही हूं। पैसा, प्रसिद्धि—कुछ भी तो हाथ नहीं आया। दरअसल मैं बबली के सामने शर्मिन्दा नहीं होना चाहती। वह यहां आ गई तो मेरे सारे पर्दे खुल जाएंगे। सब कुछ खुल जाएगा कि मैं कितने पानी में हूं।

अचानक बिजली के कौंधे सा विचार मनाली को सूझा। अगर बबली ने ज़िद पकड़ ली और वह यहां आ गई तो यह भी सम्भव है कि वे सारी सफलताएं, जो मेरे भाग्य में नहीं थीं, बबली के हाथ लग जाएं। वह मुझ से ज़्यादा खूबसूरत है, और इतनी छोटी है कि दूर तक उसे संघर्ष भी नहीं करना पड़ेगा। मैं जब आई थी तो इस महानगरी में मेरा कोई नहीं था। वह आएगी तो मैं उसकी पूर्व-पीठिका के समान हूंगी। मैं उसका भूतकाल, वह मेरा भविष्य।

बेचैनी से वह उठ कर बैठ गई। उसने बबली की तरफ देखा। वह शायद सो गई थी। लेकिन मनाली को नींद नहीं आई। वह अपने विचारों से डर गई थी। सारी रात आंखों में काट दी।

सुबह बबली देर से उठी उसकी आँखें थोड़ी-थोड़ी सूजी हुई थीं। वह बाथरूम जाने लगी तो देखा मनाली किचन में लगी थी। वह उसके पास आई, और बोली, "आई 'म सॉरी मम्मी।" और इस से पहले कि मनाली उसकी तरफ देखे वह बाथरूम में घुस गई। मनाली के चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट फैल गई।

एक बजे दोनों खाना खा कर टैक्सी में बैठीं, और बम्बे-सेंट्रल की तरफ चल दीं। परसों जब बबली घर की तरफ जा रही थी तो कितनी बातें कर रही थी। आज वह बिल्कुल चुप थी। वह जाना नहीं चाहती थी उसे जबरदस्ती भेजा जा रहा था। वह रोना चाहती थी, मगर रो नहीं पा रही थी।

मनाली जानती थी बबली क्या सोच रही है। मगर वह क्या करे? वह खुद एक भीषण दुविधा में पड़ी थी किसी निर्णय पर पहुंचना उसके बस की बात नहीं थी।

रेलवे प्लेटफार्म पर जब सब लड़कियों ने उन दोनों को देखा तो हैरान हुई कि उन दोनों के चेहरे कितने मुरझा गए हैं और कभी न चुप रहने वाली बबली तो कुछ बोल ही नहीं रही। सभी आंखों-आंखों में कुछ जानने का प्रयास करती रहीं। इतनी देर में सिग्नल हो गया। सब लड़कियां भाग कर डिब्बे में चली गई। बबली भी जाने लगी। मनाली ने उसके सिर पर हाथ रखा। फिर उसे गले से लगाया, उसे चूमा और डिब्बे में चढ़ा दिया। गाड़ी चलने को थी। दोनों एक-दूसरे की आंखों में देख रही थी। अचानक मनाली आगे बढ़ी और बबली के बिल्कुल करीब जा कर बोली, "अगर तुम्हारे डैडी मान जाएं तो तुम मेरे पास चली आना। अविलम्ब बबली की आंखों में एक चमक आ गई, चेहरे पर खुशी की मुस्कराहट फैल गई। झट से नीचे उतर कर वह मनाली के गले लग गई। वह उस से अलग नहीं होना चाहती थी। सीटी की आवाज आई। मनाली ने उसे गाड़ी की तरफ धकेला। गाड़ी ऊपर चढ़ते ही चल पड़ी। बबली लगातार हाथ हिलाती जा रही थी। मनाली भी, दोनों दूर-दूर होती जा रही थीं धीरे-धीरे गाड़ी नजरों से ओझल हो गई।

वह एक तरफ पड़े बेंच पर बैठ गई, जैसे उसमें खड़े रहने की शक्ति न रही हो। थोड़ी देर तक वैसे ही बुत बनी बैठी रही, फिर पर्स खोल कर उसमें से लिपस्टिक निकाल कर होठों पर लगाना शुरू किया। फिर पलकों और भौहों को ठीक किया। बाल ठीक से बांधे और चल दी। वह सोच रही है उसे उस व्यक्ति से अभी मिलना चाहिए, जो उसे रेडीमेड कपड़ों की दुकान खोलने के लिए ब्याज पर पूंजी देने को तैयार है। बबली के आने से पहले बम्बई में उसके पांव ठीक से जम जाने चाहिए। दूसरा दांव खेलने से पहले बिसात को ठीक ढंग से बिछाना जरूरी है। □

कहानी

नये मोड़ पर

☐ शिव रैना

बस, जी ! अल्ला ने यही एक खूबी दे रखी है। कागज़ का पुर्ज़ा हाथ में आता है, तो कलम फिसलने लगता है। सरदी, गरमी, बरसात, पतझड़ किसी मौसम का ख्याल नहीं रहता। मौसमे-बहार का-सा समां बंध जाता है। सुना है, ज़्यादा पानी पीने वाला, कभी नहीं मरता । मैं फ़ैसला करता हूं कि आज से खुद भी पंद्रह गिलास पानी रोज़ पिऊंगा। घर के हर सदस्य को इतना ही पानी पिलाऊंगा। सैर, कसरत, मालिश से, दिन शुरू होगा । खूब गहरे-गहरे सांसों को, ज़िंदगी का हिस्सा बनाऊंगा। मौसमी तरकारियों और मौसमी फलों के ढेर लगा दूंगा। मौसमी फल-तरकारियों में मौसम के तमाम रोग समेट कर, बाहर फेंकने की शक्ति होती है। माता-पिता, बीवी और बच्चे को, काफी वक्त दूंगा। किसी को शिकायत नहीं रहेगी । हर सदस्य की कोई कामना, मरने नहीं पाएगी। उनकी हर ख्वाहिश, यथासंभव, तुरन्त पूरी करूंगा। दवाई, टॉनिक, मुरब्बा, अचार-चटनियों के भण्डार जम कर लूंगा।

तभी, कॉल-बेल बजती है।

—बाहर आइए, आपके दोस्त आए हैं। बच्चा सादा-सी घोषणा करता है।

—यार, अभी तक संन्यासी बने बैठे हो ! तैयार नहीं हुए ? तुम्हें बताया था ना कि आज 'स्पेशल-शो देखने जाना है । क़ादिर और जसवन्त बाहर खड़े हैं। मेरा दोस्त मुझे झिंझोड़ता है।

"तो क्या हुआ ? संन्यासी से गृहस्थी बनने में कौन-सा टॉइम लगता है । 'शेव' मैंने कर ली है। सिर्फ़ सूट पहनना है।" मैं बदहवासी से, कपड़े बदलने लगता हूं।

शेफ़ाली अपना पीला चेहरा लिए, मेरे क़रीब आती है—जी, आज मामी जी को देखने अस्पताल जाना था।

—आं··· हां-हां। रात को चलेंगे। मैं शाम सात बजे तक ज़रूर लौट आऊंगा।"

—मां जी की सांस की दवाई और सेब का मुरब्बा···?

याद रहा, तो साथ लेता आऊंगा। वर्ना पिंटू से मंगा लेंगे।

सज-धजकर गेट से बाहर आता हूं, तो पिंटू हाथ पकड़ लेता है: "पापा, आपको अपना 'प्रॉमिज़' याद है ना ? वो तीन चीज़ें ?"

—याद है, याद है। इतना भुलक्कड़ नहीं हूं। और बेटे, मैं खाली याद नहीं रखता। काग़ज़ पर नोट करके रखता हूं। यह···यह रहा काग़ज़ ! मैंने आंखें नचाकर कहा।

एक बुझी-सी मुस्कान लिए, बेटा, अपनी मम्मी की ओर भाग जाता है।

ग्यारह साल और ग्यारह सालों की डायरियां, बहुत कुछ होते हैं। एक आम आदमी का इतिहास फैला होता है ग्यारह सालों में। और, ये ग्यारह डायरियां, उस अदना आदमी के दु:ख-सुख का आईना होती हैं। ग्यारह सालों की ये ग्यारह डायरियां, मेरी अपनी हैं। हर डायरी, बड़ी खूबसूरत है। नया साल शुरू होते ही, शुरू की गई है। नया साल मनाने का अपना अंदाज़, सबसे जुदा है। लोग एक बार मनाते हैं; मैं दो बार मनाता रहा हूं। पहले घर वालों के साथ; और फिर खर्चीले-भड़कीले दोस्तों के साथ पेस्ट्री, फलों, सूखे मेवों और गर्मागर्म कॉफी के साथ, घर पर। होटल के 'रिज़र्व' कोनों में मांस और मदिरा के साथ ! काफी खर्च हो जाता है। लेकिन उस दिन, मेरे दिमाग़ में ख्याल नहीं, सूरज फूटते हैं। मुझे यह गहरा अहसास होता है कि पिछले क़ीमती साल के तीस सौ पैंसठ दिन, मनचाहे ढंग से नहीं बीते। यह चुनौतीपूर्ण अहसास भी होता है कि नये साल के तीन सौ पैंसठ दिनों को, कस कर थाम लूं !

नये साल के पहले दिन को मैं, कसकर थाम लेता हूं। नया साल मनाने के बाद लोग सो जाते हैं। मैं जागकर, अपने ख्यालात को काग़ज पर उंड़ेलता रहता हूं। सब कुछ बदल दूंगा। 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष' की हर मंज़िल, संवार दूंगा। अपनी हर ड्यूटी, बेहतरीन ढंग से निभाऊंगा। ईमानदारी और मेहनत से, इतना पैसा कमाऊंगा कि घर-भर की ज़रूरतें पूरी हो सकें। मेरे अलावा, किसी को काम न करना पड़े। अपने छोटे परिवार को, एक आदर्श और सुखी परिवार बना डालूंगा। रोमांस और बेफ़िक्री के झूले होंगे। दान-पुण्य, भक्ति-भजन के कामों में भी, पेश-पेश रहेंगे। मकान में चुनी हुई, सिर्फ़ बेहतरीन चीजें रहेंगी। पांच-कमरों का मकान, इतना सादा और तिलिस्मी होगा, कि उसके अंदर 'स्विमिंग-पूल' से लेकर प्राइवेट 'ऑडीटोरियम' तक होगा और किसी को अहसास तक न होगा। मकान ईंट-सीमेंट ही से नहीं, अक्ल से बनता है। मकान रोज़-रोज़ नहीं बनाए जाते। एक बार बनाओ, मगर मॉडल बना कर दिखा दो।

नये साल की स्फूर्ति-भरी भोर ! तन-मन में अजीब-सी हिलोरें उठ रही हैं। अचानक, चपरासी आता है दफ़्तर से। एक रुक्का दे जाता है: "साहब ने फ़ौरन आपको कोठी पर बुलाया है। गाड़ी बाहर खड़ी है।" चेहरे पर 'यू-डी क्लोन' चुपड़ कर, मैं गाड़ी में बैठ जाता हूं। आखिर नौकरी है !

साहब देखते ही कहते हैं: "वैरी गुड ! तो तुम आ गए ? देखो, शर्मा। कुल नौ दिन का 'स्टडी-टूर' है। बड़ा चैलेंजिंग' काम है। मैं चाहता हूं, तुम आज शाम ही निकल पड़ो। यही जीप ले जाओ। 'तफ़्सील' तुम्हें इस किताबचे में मिल जाएगी। शाबाश ! चटपट तैयारी कर लो। मुझे यक़ीन था, कि तुम खुशी-खुशी जाओगे। बाकी लोग बड़े मनहूस हैं। बस,

रिटॉयर होकर, घर पर बैठना चाहते हैं। कुंए के मेंढक ! सभी के घर और बीवी-बच्चे होते हैं ! मगर इसका यह मतलब तो नहीं, कि झूठी-सच्ची दरख्वास्तों और बहानेबाजी से, ड्यूटी ही छोड़ दो। अच्छा, देखो। खजांची से 'एडवांस टी० ए०' ले लो। बेस्ट ऑफ लक !"

'स्टडी-टूर' के अपने मजे होते हैं। अनदेखे पहाड़ी और मैदानी इलाकों में, इतनी वैरॉयटी है, कि क्या बताऊं ! मसरूफ़ियत के बावजूद, मैंने खुद को हरा-भरा और सदाबहार महसूस किया है। लगता है, अभी शादी तक नहीं हुई ! पिछले साल तो, दो खाते-पीते आदमी मुझे अपना दामाद बनाने के ख्वाब लेने लगे ! अगर सेक्शन-अफ़सर भाटिया पोल न खोलते, तो शायद वे लोग मुझे 'ठाका' भी दे जाते ! और भी बड़े खट्टे-मीठे अनुभव होते हैं। 'जंगल में मंगल' वाली बात होती है। मुर्गे खा-खाकर, बुरा हाल हो जाता है। जिस दफ्तर की तरफ जाओ; वही आदर खातिर के रिकॉर्ड तोड़ने लगता है। हमारे शहरी-दफ्तरों में अक्सर, ऐसा नहीं होता। होता भी है, तो कुछेक खास-खास मौकों और खास-खास पॉर्टियों के साथ। 'कोल्ड-ड्रिंक्स' के साथ कॉफी; लस्सी के साथ शर्बत; बर्फ़ी के साथ सिगरेट—कुछ अजीब किस्म का माहौल होता है। यों लगता है, डरे-सहमे लोग अपनी जेबों के मुंह खोलकर, हमारे अनचाहे-स्वागतों में जुटे हैं। उनके चेहरों पर अक्सर नक़ली मुस्कान और भद्दी मासूमियत होती है। खैर। 'एडवांस' यात्रा-भत्ते की एक मामूली-सी रकम, इस 'टूर' पर खर्च होती है। बाकी रकम खर्च होती है मौसमी तोहफों पर। पहाड़ी गुच्छी, अनारदाना, कलाड़ी, कम्बल, नम्दे, कालीन—कई चीज़ें उठा लाता हूं। घर वालों के चेहरों पर, एक क्षणिक खुशी उभरती है, जो अपने-अपने हिस्से के तोहफे सहेजने के साथ, खत्म हो जाती है। और, घर लौटते ही, घर-परिवार जन्नत लगने लगता है। मेरा आवारा कलम फिर चलने लगता है कागज़ पर। मेरी सभी कामनाएं, सभी मन्सूबे और सभी अधूरे काम सूची की शक्ल में, कागज़ पर टंकने लगते हैं। मैं बता चुका हूं, कि मैं स्मरण शक्ति पर क़तई यकीन नहीं करता। मैं हर अच्छी-बुरी बात, लिखकर रखता हूं। मुझे दिलो-दिमाग पर ज़ोर देकर, कुछ सोचना नहीं पड़ता। मैं सोचना भी नहीं चाहता। हाड़-मांस का यह दिमाग, दिन-ब-दिन वैसे भी कमज़ोर हो रहा है। स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी और दफ्तर पहले ही दिमाग की धज्जियां उड़ा चुके हैं। रही-सही कसर प्रदूषण, ब्लड-प्रेशर और तनाव ने निकाल दी है। मेरी सूची में हमेशा सात कॉलम रहते हैं : मैं खुद, मेरी बीवी, मेरा बच्चा, मेरी मां, मेरे पिता जी, मेरे पड़ोसी और मेरा देश। बड़ी 'ऑइडियल' किस्म की फ़ेहरिस्त होती है। 'अपने मुंह मियां-मिट्ठू' बनने वाली बात है। मगर यह सच है, कि इस पारिवारिक सूची पर, मुझे भी कोई राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय एवॉर्ड मिल सकता है। मिलना भी चाहिए ! पैसे की अंधी दौड़, मार-धाड़ और देश-द्रोह के इस अंधे दौर में, है किसी के पास परिवार, पड़ोसी या राष्ट्र के लिए समय ? टी० वी०, वीडियो और 'स्टीरियो' ने वैसे ही इंसान को खुद-पसंद और अलग-थलग कर रखा है। लोगों के पास तो, मिज़ाजपुर्सी और मातमपुर्सी का भी वक्त नहीं रहा आज ! मगर मेरा यह अक़ीदा रहा है कि पड़ोसी को सचमुच 'मां का जाया' समझकर, प्यार किया जाए। और, इस दुनिया के इस सर्वश्रेष्ठ देश को, पूरे दिल से प्यार किया जाए। देश रहेगा, तो हमारे घर-परिवार बने रहेंगे।

मेरा कलम चल रहा है। मेरे परिवार की समस्याएं, मांगें और कमियां—अंतर्राष्ट्रीय मसलों की तरह, मेरे सामने आ रहे हैं। मैं तरतीबवार, उन मसलों के समाधान लिखता चला आ रहा हूं। मुझे पूरा-पूरा विश्वास है, कि आज और अभी से, मैं इन सातों कॉलमों में

लिखी बातें, पूरी कर लूंगा। घर के सभी लोग गहरे-गहरे सांस लेना शुरू कर देंगे। रोज खूब पानी पिएंगे। कसरत, सैर और मालिश से, दमक उठेंगे उनके मरियल बदन! हर ख्वाहिश, पैदा होते ही, पूरी होगी! ज़िन्दगी में अनुशासन और नियम आएंगे। जीवन के धारों को, एक नया मोड़ मिलेगा। सुकून और राहत का माहौल होगा।

पिता जी सुबह जागते ही, अपना इम्पोर्टिड ट्रांज़िस्टर संभाल लेते हैं। ट्रांज़िस्टर की सुई घुमाकर, वे प्रात:कालीन भजन तलाश कर रहे हैं। अचानक, ट्रांज़िस्टर की सुई 'रेडियो सीलोन' पर अटक जाती है। पार्श्व-गायक मुहम्मद रफ़ी का 'नई उम्र की नई फ़सल' फिल्म के लिए गाया गीत, उभरता है :

'कारवां गुज़र गया, गुबार देखते रहे... !' □

मीना ने स्मृतियों के फैलाव को समेटा और वह दीवारों पर जमे मकड़ी-जालों को साफ करने लगी।

○○

दुर्गा और देवदासी ! भारत की नारियों की जीवन-स्थिति आज भी दोनों के बीच की है।'...उसने गुलाम की मारखायी देह की तरह अपनी थकी पसलियों, बाजुओं और पीठ को सहलाया। अपने पति के एक कवि-मित्र की उपरोक्त पंक्ति बार-बार कौंध जाती है। मीता के दिमाग में।

वरण की स्वतन्त्रता उसे कभी मिली नहीं। घर-गृहस्थी में वह क़ैदी की तरह काम करती रही। विचार...? विचार वह करता है, जिसके पास वक्त हो। मीता के पास फ़ुरसत का वक्त कभी नहीं रहा।

बूढ़े सास-ससुर की तीमारदारी में दस साल गुज़रे। फिर बच्चे बड़े हुए। पति का गिरता स्वास्थ्य हमेशा उसकी उपस्थिति का तलबगार रहा। जहां गए, साथ ले गए। उनका साथ ले जाना और मीता जैसी नितान्त घरेलू औरत का साथ जाना न कभी परिवार को अच्छा लगा, न मित्रों को।" ज़रूर कोई काम निकलवाता है।" ऐसे-ऐसे फिकरे सुने कि मीता कभी-कभी सुन्न-स्तब्ध वनवासिनी, एकान्तिनी, परित्यक्ता सीता बन जाती कुछ दिनों के लिए।

उसने तो एक साथ अहिल्या का अभिशाप, सीता की दारुण व्यथा और सावित्री का कठोर पतिव्रत ढोया है—कोमल, कमज़ोर और लगभग अशिक्षित मीता ने। उसने पति की प्रशंसिकाओं और महिला-मित्रों की खातिरदारी की है—सब कुछ जानते हुए गोपनीय कभी कुछ नहीं रहा। उसके लिए। फिर भी वह कितना सहज बन कर रही अब तक !

परिवार और पति से निरन्तर उपेक्षा और अवहेलना पाकर भी वह खुश रही, नहीं, खुश दिखती रही। कालोनी की चकरी पर बैठे हुए उसे देखना लोगों में कुतूहल नहीं, एक मातृभाव जगाने लगा था।...भाई सब निकम्मे निकले। देवर ने कभी सुध नहीं ली, जिसे उसने जतन से बड़ा किया। बच्चे और पति उसे काम करने वाली अच्छी मशीन समझते रहे। जिससे बोली हँस कर, वह उसका होकर रह गया। लेकिन यह 'बोलना' भर कभी घर के लोगों को नहीं रूचा।

'नर की छाया नारी !' मीता पंत जी की इस काव्य-पंक्ति का जीता-जागता, चलता-फिरता संस्करण है। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं। उसकी अपनी कोई दिनचर्या, अपना कोई वक्त नहीं।

वह सिसिफ़स की नियति लिखा कर लाई है शायद विधाता से।

आज उसका मन बेहद उदास है। उसे जाने क्यों अपने पर क्रोध आ रहा है। इनका तबादला होता रहे और वह ट्रंक से सामान उतारती रहे, दूसरे के घरों के जाले साफ करती रहे। सिर्फ सागर में हमउम्र महिलाएं मिली थीं। उनसे पांच मिनट बात करके, उनके साथ थोड़ा घूम-फिर कर उसे कितनी शान्ति मिल जाती थी।

वे पांच वर्ष उसके जीवन की सार्थकता के प्रर्याय बन गए थे।

○○

आज इस नये, नहीं, परिचित कस्बे में, जो उसका पीहर और ससुराल भी है, बेहद कोफ़्त हो रही थी।

अचानक आंगन में गुलाब की डाल से एक फूल टूट कर गिरा।...सागर में अपने क्वार्टर के सामने उसने कितने गुलाब लगाए थे। उसकी आँखों से दो बूंद आँसू गिरे और मिट्टी में समा गये। "यह फूल फिर लग जाता डाल पर तो कित्ता अच्छा होता।" उसने सोचा। उसका सोचना कितना बेमानी था। अब तो यहीं रहना है—असंग और असंज्ञ। कोई नहीं, जिससे बोल भी सकें। घूमना, चहकना तो दूर की बात है।

रावटी की घोड़ाकुंड नदी और राजगढ़ की नेवज की वेगवती धाराएँ और सागर के उस तालाब की उठती-गिरती, आती-जाती लहरें उसके क़ैदी जीवन में कितनी सार्थकता और स्वतन्त्रता की हिलोरें बन कर मन-प्राण में समा जाती थीं। वह अतीत···वह सब कुछ पुराना, अपनी समग्र व्यथा का घनीभूत सा उसके सामने साकार खड़ा था।

'डाली से टूटा फूल
कभी डाल पर नहीं लगता,

नदी की धार
लौटकर नहीं आती कभी।

शमशेर की ये काव्य पंक्तियां अपनी-भोली, अर्द्धशिक्षित अर्द्धांगिनी को सुनाते हुए मीता के पति ने कहा था कभी।

आज वह कथन कितने सही अर्थों में सन्दर्भ पा गया था।

एक नदी गुमसुम, आंगन में सिसक रही थी। एक डाल यादों के गुलाब ज़मीन पर बिखरा कर श्रीहीन हो गई थी।······

अतीत की नदी की धार कभी नहीं लौटती, सच ! और वह मकड़ी के जाले साफ करने लगी।······ □

कन्नड़ कहानी

नृशंसता

☐ एस० दिवाकर

"हैल्ल इज़ अदर पीपल", ज्यां पाल सार्त्र

प्रोफेसर तिरुच्चेन्दूर श्रीनिवास राघवाचार्य और उनकी धर्म पत्नी कल्याणम्माजी की इकलौती बेटी अलमेलू परसों मर गई। शरीर की खाल के भीतर घुस कर हड्डी कतरने वाली गर्मी, कोडमबारकम स्टेशन के पास सूख कर, गल कर, भाप होती जा रही डाम्बर पर मरती पड़ रही अलमेलू।

यकायक तेज गति से आकर एक छुरी ने अलमेलू की पीठ को चीर दिया था। पलनी-चापी, जो छोटी-सी खींच कर ले जाने वाली गाड़ी में नमक बेचता था, उसे अपने नंगे कलेजे पर टिकाये था। भीड़ बने लोग एम्बुलेंस का निरीक्षण कर रहे थे।

जब भी अलमेलू आंखें खोलती, उसे अनंत नीलाकाश दिखाई पड़ता था। लगता था, अपने चारों ओर घिरे काले सिरों पर अभी-अभी नीलरंग चढ़ेगा। कुत्ते के भौंकने के साथ ही रेल का चीत्कार। हबीबुल्ला-गली के अपने घर-आंगन के पुष्पों की सुगंध मुझे पुकार रहा है, ऐसा सोच अलमेलू ने अपना नाक फुलाया चारों ओर की बातें उसकी समझ में न आ रही थीं। दौड़ती रेल के साथ-साथ धड़-धड़ाते सहित समय के सरकने का भ्रम। एकाएक उसे छाती पर उठाए आदमी के मुख से आती खटास भरी गंध का एहसास हुआ। उसने बुरा न माना।

यद्यपि अलमेलू छत्तीस वर्ष की थी तो भी वह एक औरत के रूप में बढ़ी ही नहीं थी। यह सच है, प्रोफेसर तिरुच्चेन्दूर श्रीनिवास राघवाचार्य जी अपने अठारह वर्ष की उम्र में ही शादी-शुदा हो गये थे। वडगलै-रिवाज में अत्यंत श्रद्धावान कल्याणम्मा भी उनकी पसंद की पत्नी थी, यह भी उतनी ही सच बात है। मगर अलमेलू के जन्म लेने में प्रोफेसर साहब को चालीस बरस लेने पड़े। अपने वंशोद्धारक की निरीक्षा में प्रोफेसर साहब तो थे ही, मगर जन्म लेते ही लकवे बीमारी की शिकार बनी लूली अलमेलू उनके लिये प्यारी बच्ची न हुई क्योंकि वह खूबसूरत न थी।

हबीबुल्ला गली के आन्डाल मन्दिर में अलमेलू ने अपने जीवन के ज्यादा दिन बिताये, ऐसा उसने अनुमान लगाया था। घर से सटे दो खंभों पर खड़े फूल गुच्छे। सामने विशाल हाल। खिड़की के खुलने पर भी हाल में धुंधलापन। दोनों पहलुओं में उठे हुए अटारी घर, इस घर में रोशनी को घुसने का मौका ही न मिला था। नांद ले जाने वाले दरवाजे के बायें कोने में एक लंबा आईना। बायीं तरफ बेंत की दो कुर्सियां। दायीं तरफ एक टेबल। एक दीवार पर कतार पर चिपकाये गये दादा-परदादाओं के चित्रपट। कहीं से लौटने के बाद अलमेलू को टेबल पर अपनी चीजें रख कर मां से बातें करने रसोई घर में घुसने की आदत है। उसकी पोशाकें और किताबें, जो वह लायब्रेरी से लाती थी, उनसे लेकर बाहर की दुनिया से संबंधित सभी खबरों पर प्रोफेसर साहब और उनकी धर्मपत्नी की आंखें लगी रहती थीं।

शाम के वक्त इसी हाल में प्रोफेसर तिरुच्चेन्दूर श्रीनिवास राघवाचार्य और उनकी धर्मपत्नी बेंत की कुर्सियों में बैठकर विशिष्टाद्वैत के तर्क में कभी-कभी डूब जाते थे। करधनी और छोटे बांह वाला कुरता पहने प्रोफेसर साहब एक पुरानी किताब जिससे मिट्टी की गंध आती थी, खोलते हैं; पहले पहल टेढ़ी नज़र से, फिर पूरी तरह अपनी धर्मपत्नी की ओर देखकर जकड़े होंठों के बीच, जहां सिर्फ दो ही दांत थे, मुस्कुराते हैं। कल्याणम्माजी के लटकते गाल के खिलते ही उनका बायां हाथ, नाक के सिरे पर आ जाता है।

देख कल्याणु! तिरुक्कोविलूर के जिस चबूतरे में पोप है—आलवारन सोते थे, वह उन्हें काफी था। जब पूदताल्वार आये, उन्हें उठ बैठना पड़ा। फिर भी कोई और भी वहां है, जान कर तीनों की आंखें खुलीं।

"महा महिम हैं! महा महिम हूं! पोदत्ताल्मार अन्बेता अलियाह पाशुर वे कितना अच्छा! भक्ति ही मिट्टी का दिया, आशा ही घी, आनंद से जलने वाली चिता ही बत्ती; कहते हैं न, इस ढंग से मेरी आत्मा से नारायण की ज्ञानज्योति को जगमगाया।" कल्याणम्मा नाक के सिरे रगड़तीं; बंद मुंह फैलाकर, आंखें आधी बंद कर के परमानंदित हो जातीं।

"कितनी बार तुम्हें आंचल ओढ़ने को कहा है, मैंने। मान नहीं मर्यादा नहीं।" ऐसे मौके पर अगर कहीं अलमेलू दिखायी पड़े तो तुरंत ही प्रोफेसर साहब नाराजी से भौंहें चढ़ाते थे। मद्रास विश्वविद्यालय में दीर्घकाल तत्वशास्त्र पढ़ा कर प्रोफेसर राघवाचार्य जी निवृत्त हुए थे, अब उन्हें विशिष्टाद्वैत ही मात्र चैन देता था। एक ज़माने में शोपेनहावर में संकल्प सिद्धांत पर ये बिक गये थे, मगर इधर कुछ दिनों से कहा करते थे—भगवान रामानुज के कर्मयोग के सामने और सभी तत्वों की आरती उतार कर फेंक देना चाहिए। अपने पिता और दादा के धर्मनिष्ठ-शुचि जीवन को याद करके ही पुलकित हो जाने वाले प्रोफेसर साहब को अलमेलू परायी लगी—तो यह कोई अचरज की बात नहीं है। मां-बाप तो मुझे प्यार करें, दुलार करें यह दुख अलमेलू को था। घर में उसे ज्यादा आज़ादी न थी। मां-बाप के इच्छित गुणों के ठीक विपरीत जो थी वह। अपने कमरे की खिड़की तक न खोल सकती थी।

अलमेलू जब बीस बरस की हुई, एक दिन घर के सामने गुजरते दो नटखट उसे 'बूढ़ी' कह कर पुकारने लगे। जब वह तीस बरस की हुई तो वह सचमुच ही बूढ़ी हो चली थी।

लंबे चेहरे वाली अलमेलू दुबली हो गयी थी। छोटी-छोटी आंखों के नीचे की खाल काली हो गयी थी। लंबी नाक वह भी चपटी हो गयी थी। चोटी, जो छोटी और काली थी, गरदन से नीचे न उतरी थी। दायें गाल पर दाग, जो लकवे के आने से पड़ गया था। चलते वक्त दुबले काष्ठ जैसे अपने दायें पैर को टेक कर बायां पैर उठा रखती थी।

यह अलमेलू भी एक जमाने में प्रेम में फंस गयी थी—यह बात पूरी हबीबुल्ला गली और प्रोफेसर-दंपति को पता ही न थी। वह तो कुछ दिनों की मुहब्बत थी, बस। अलमेलू को कभी-कभी लगता है—जिसने उसे प्यार किया था, क्या वह मर ही गया ? उस समय की घटना है। जब वह अपने मैके कांचीपुर गयी थी, मंदिर के बगल में जो घर था, वहां पर काकी की शादी की धूमधाम मची हुई थी। कोई-कोई रिश्तेदार समान उम्र वाली लड़कियों को जहां-कहीं भी चलने-घूमने का सुअवसर मिल रहा था। नाम क्या है उसका ? रामानुज है न ? उसने ही अपना हाथ पकड़ कर मंदिर की देहरी को पार कराया था न। खूबसूरत युवतियां उपेक्षा भरी नजरों से देख, अपने पास से गुज़रने में भी हिचकिचाहट का दंभ दिखाती थीं—उस वक्त आंखों में ही प्यार उमड़ता चलता था। इतना ही नहीं, शादी के समाप्त होते ही दूसरे दिन, जब हम पंद्रह साथी मिल कर 'नेंज़िल ओरू आलयं' सिनेमा देखने गये थे, तब रामानुज अपनी बगल में ही बैठा था। थियेटर के अंधकार में उसके हाथ ने उसके शरीर से बातें की थी। जवानी की सहज लज्जा में, न चाहने की दिखावट में अलमेलू ने भी प्यार किया था—छिपते हुए। कांचीपुर से वापिस आने के बाद भी कई महीने वह लड़का अप्रत्यक्ष रूप से परेशान रहा। अब वह जिंदा है कि नहीं, किसे मालूम ! अलमेलू तो बाजार से छोटी-मोटी चीज़ें सब्जियां लाती थी और घर में मां की मदद करती हुई अपनी जिंदगी घिसने लगी थी।

अब, अपने छत्तीस बरस की उम्र में सौंदर्यपूर्ण या दयनीय रूप न पाकर अलमेलू मरती पड़ी थी। गली के किनारे गिर जाने से फास्टिक बास्केट जो हाथ में था, दूर उछल कर गिर पड़ा था। अस्तव्यस्त साड़ी, इधर-उधर फैले लाठी जैसे पैरों को घुटनों तक एक ही नाप में दिखालाती थी। पलनीचामी ने उसे सीधा बिठा कर अपने सीने से सटाया और उसकी साढ़ी को ठीक किया।

छुरी लगने की खबर सुनते ही पलनीचामी दौड़ कर आया था। वह कमर पर सिर्फ एक लुंगी बांधे था। शायद वह सोया था; और खबर सुनते ही उठ कर भाग आया था। पलनीचामी मोटा आदमी था, उसका शरीर कोयले जैसा काला भी था। सीने में घने बाल। चेहरे में उभर कर उसकी आंखें बाहर आ रही थीं, उनमें अलमेलू ने भूरे धब्बों को देखा। मन में सोची, यह एक झोंपड़ी वाला है, फिर भी मुझे कितना अच्छा लग रहा है। धीरे-धीरे उसका चेहरा घबराहट से परे खिल-खिला उठा। उसे लगा, बराबर पास आती उसकी सांस में अपना श्वास भर रहा है।

"पानी···" अलमेलू ने सिसकियां भरीं।

"पानी, पानी ला दीजिए" आसपास खड़े लोगों से पलनीचामी ने बिनती की।

"पानी नहीं, सोडा ला दीजिए" किसी ने कहा।

अलमेलू को अनोखे सुख का अनुभव हुआ। मां-बाप से जिस प्यार की चाह मैंने की

थी, वह यह काला कलूटा दे रहा है। इसमें और मुझ में कितना अंतर है। अगर मैं काली ही पैदा होकर इसकी बेटी हो गयी होती तो ये मुझे कितना प्यार कर रहा होता!...या यह ही मोटा होकर मेरा बाप हो गया होता तो मुझ से नरमी से बातें करता, प्यार से देख रहा होता, शायद...इस सोच के साथ ही अलमेलू धीरे से हंस दी। जब दायीं ओर मुंह खींचकर हंसी। तो उसकी वह हंसी झोंपड़ पट्टी वाले लोगों को खटकी। अपने सीने से लगाये व्यक्ति में उमड़ी जिस करुणा को उसने देखा था, उसे उसने और किसी में शायद न पाया था।

पिछले तीन सालों में अलमेलू सामान खरीदने सुबह-शाम इसी रास्ते से होकर पांडी बाज़ार जाती थी। हबीबुल्ला गली से मासिलमणि-मुदली रास्ते से मुड़ कर सीधा पांडी बाज़ार ही जाया जा सकता था। मगर वह मासिलमणि-मुदली रास्ते में बिना मुड़े कोडम-बाक्कम रेलवे स्टेशन जाकर रेल की पटरी के आस-पास कतार बांधे झोंपड़ियों के मार्ग में चक्कर लगा आती थी। इसके लिए कारण था; वह अपरिचित जो उसके कंधे से कंधा रगड़ कर चल दिया था। यद्यपि डर के कारण वह डगमगायी, फिर भी उसकी कही एक बात ने अलमेलू के उदास गालों में रंग भर दिया था। अपनी ज़िंदगी का ऐसा छोटा साहस भूला ही न जा सकता था! उस दिन अलमेलू पांडी बाज़ार जाने का निश्चय कर सीधे कोटमबक्कम स्टेशन की ओर चलने लगी। एक चौक के कोने में एक सपेरे ने एक बड़ी भीड़ अपनी ओर आकर्षित कर रखी थी जाने क्या हो गया था, लोग वहां जमा हो रहे थे—इन लोगों को देख जल्दी में पांव खींचती जाती अलमेलू को अनोखा एहसास हुआ। भीड़ को पार करने पर भी उसी ओर आंखें गड़ाये वह जा रही थी, तभी उसे यकायक लगा—किसी ने उसको कंधे से रगड़ा है। चिथड़ा घुटन्ना पहने तिरछी नज़र वाला वह आदमी नाटा था। उसके कंधे पर एक तौलिया था। बिखरे बालों से उतरता पसीना गालों पर लकीरें बनाता था। सीने पर के बाल चमकते थे। निचले होंठ पर जो फोड़ा था, फट जाने की स्थिति में था। "एन्न अय्यर कुट्टी?" जब अलमेलू मुड़ी तो वह बायीं तरफ गिर जाने वाले व्यक्ति जैसा बहाना बना कर अलमेलू की ओर आंखें उठा। दायें हाथ से पर्स को सीने लगायी अलमेलू को लगा, वह खिलखिला कर आंखें मार रहा है। वह खिलखिला कर आंखें मार रहा है, यह सच है; उस क्षण उसने भौंहें भी चढ़ायी थीं, यह भी सच है। मगर दूसरे ही क्षण लगा, 'एन्न अय्यर कुट्टी?' वाक्य में प्यार उमड़ा है। उसने जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाये। बायीं ओर की गोश्त-दुकान पर कभी भी नज़र न डालने वाली अलमेलू आज वहां पर लटकायी गयी बकरी की पसलियों को अपलक देखने लगी थी। लगा कि वहां जो-जो लोग थे, उन में से कुछउ सकी ओर मुड़े थे। तब दुल्हन के समान अलमेलू का चेहरा शर्म से लजाया, उसके गाल लाल हो उठे थे।

भगवान रामानुजाचार्य द्वारा विवेचित स्थित प्रज्ञता के—यतमान संज्ञा, व्यतिरेक संज्ञा, एकेन्द्रिय संज्ञा और वशीकरण संज्ञा—इन सोपानों को प्रोफेसर तिरुच्चेन्दूर श्री निवास राघवाचार्य कल्याणम्मा को सविस्तार रूप से सुना रहे थे, तभी मुस्कराती अंदर पांव रखती अलमेलू से रस भंग हुआ। "मुस्कराती क्यों आ रही हो? क्या हुआ तुझे हंसने वाला? पगली!" राघवाचार्य ने बेटी को डांटा। भगवान से ही शादीकरने का दृढ़ संकल्प करने वाली आडील, भगवान के लिए तोड़े फूल को खुद "अपने जूड़े में ही गूंथकर, उस भगवान को क्या वह पसंद आयेगी? कहते हुए आइने देखने के प्रसंग को—राघवाचार्य सुनाने लगे।

अपने कमरे पहुंची अलमेलू को खिड़की खोलने की इच्छा हुई। रात के वक्त आईना देखना अशुभ है न? खिड़की पर आईना उल्टा रखा हुआ था, उसे अलमेलू ने धीरे से

उठाया। 'एन्न अय्यर कुट्टी,' आईने में चमकती आंखों वाला चेहरा दिखाई पड़ा। नाक का सिरा चपटा न था। दायें गाल पर जो दाग था, उसका भी पता न था। लरहों जैसे सिर के बाल। शाम को जिसने कंधा रगड़ा था, वह रामानुज ही होगा। नहीं, नहीं, यह दूसरा है। यह भी मुझे भी प्यार करने वाला है। मैं सचमुच कितनी सुंदर हूं। अलमेलू आईने में ही देख रही थी, तभी बरामदे के दरवाजे को बन्द कर लेने की आवाज सुनाई पड़ी। अलमेलू ने सोचा, यह वेदांत चर्चा इतनी जल्दी क्यों खत्म हो गई?

रसोई घर में पिता के सामने थाली के आगे घुटने टेक कर बैठने में अलमेलू को बहुत बुरा लगा। सामने पिता के रहने पर भी वह सहज ही न हुई। उसके चेहरे की नये कांति से प्रोफैसर श्री निवास राघवाचार्य जी ने बेचैन होकर पत्नी की ओर गम्भीरता से कई बार देखा।

खाना खाने के बाद कल्याणम्मा 'कल्की' पत्रिका उलटने बैठ गयीं; तभी प्रोफैसर साहब को दूसरी बार 'हिन्दू' पत्रिका में आंखें दौड़ाने की आदत है। मेज के अलावा आज बिस्तर बड़ा लगा। उस पर अलमेल उल्टी लेट गई। सपेरा, चारों ओर से घेरे लोग, कंधा मार कर आंखों से छेड़ने वाला आदमी और गोश्त की दुकान में अपनी ओर आंखें लगाए रहने वाला उसके सामने घूमने लगा। रोज की तरह आज भी उसने रामानुज के साथ बीते दिनों की याद की। उसकी बांहों में समा जाने जैसे; उसका हाथ अपने तन के कोमल भागों को कस कर पकड़ने जैसा अनुभव कर सो गई।

उस दिन से अलमेलू ने पांडी बाजार जाने के लिये मासिलमणि रास्ते में न उतर कर कोडमबाइकम रेल की पटरियों से गुजरने वाली सड़क को ही पकड़ा। लोगों की चाहे जितनी भी भीड़-भाड़ हो, उसे उतना ही ज्यादा अच्छा लगता था। इस रास्ते में दो फुटपाथ थे, एक पर कतार में झोंपड़ियां ही झोंपड़ियां थीं। दूसरे पर लोग ही लोग। बास्केट पकड़ कर लंगड़ा कर चलती हुई अलमेलू का शरीर यदि किसी से रगड़ खा जाता तो देखने वालों को अपमान का अनुभव न होता था न। यहां झगड़ा, मारपीट, लूट-खसोट, ये तो यहां की आयी बातें हैं, यह जान कर भी अलमेलू न डरी। यकायक तन रगड़ने वाले लोगों से, कौतूहल-खोलने वाली आंखों से, कभी-कभी छेड़खानी वाली तर्ज़ में सुनाई पड़ने वाली सीटी से वह पुलकित हो जाती थी।

अलमेलू अपनी जिंदगी के छत्तीसवें वर्ष में थी। जब इसी सड़क पर उसे काट डाला गया सवेरे के ग्यारह बजे थे। गोश्त की दुकान के सामने एक बड़ी भीड़ जमा थी। एक अधनंगा, तब मोटा-ताजा आदमी, सोलह-सत्तरह बरस के एक लड़के को उसके बाल पकड़ कर जमीन पर पटक कर, बिना मुख देखे, बराबर पीट रहा था। लड़के के मुंह से खून टपक रहा था। उसके कपड़े चिथड़े-चिथड़े हो गये थे। कुछ दूर पर गोबर की टोकरी के पास बैठ कर पान-सुपारी चबाती दो औरतें इस झगड़े को देख रही थीं। जिस औरत ने अपने नाक के दोनों ओर नथनी पहन रक्खी थी, मोटे आदमी की पीठ पर वह धीरे से अपना कंधा जुड़ा रही थी। दूसरी औरत अपनी दोनों टांगें फैला कर कांख खरोंचती अपनी ही धुन में बैठी थी। अलमेलू इन सब को देखती, लंगड़ाती, जल्दी-जल्दी में जमी भीड़ के किनारे से बिना आगे-पीछे चलने लगी। अभी कुछ फासले पर ही गयी होगी; कि एक "सूअर के बच्चे, अभी तुझे देखता हूं" —चीखता उस मोटे के हाथ से अपने को छुड़ाकर अलमेलू की ओर दौड़ आया। मोटा

ताजा आदमी 'धत्' कह कर पीछा करने आया। भीड़ में से एक ने मोटे आदमी को पकड़ कर रोकने की कोशिश की। लड़का जल्दी ही अलमेलू के सामने आकर अपने दोनों हाथों से उसके कंधों को पकड़ कर मोटे आदमी को अंधाधुंध गालियां बकने लगा। यकायक उसके कंधे पकड़ कर अपने शरीर से सट कर खड़े हो जाने वाले लड़के को देख अलमेलू का चेहरा विचित्र अनुभूति से भर उठा। दूसरे ही क्षण उस लड़के के मुंह से खून उतरते देख वह कांपने लगी। अब तक मोटे आदमी को दो लोगों ने कसकर पकड़ लिया था। अंधाधुंध चीखते-चिल्लाते उसने यकायक एक छुरी बाहर निकाली। छुरी तेज धूप में चमकी। लड़के के अलमेलू के आगे झुकने में और मोटे आदमी के फेंके हुए के फेंका हुआ छुरा अलमेलू की पीठ में घुसने में कोई बाधा न हुई, लड़का, उसे छोड़ कर आगे की ओर दौड़ा। अलमेलू को लगा, किसी ने उसे मारा है, वह चीख पड़ी। मोटा आदमी भी, जिसने छुरी फेंकी थी, उसे छोड़ कर लड़के को पकड़ने दौड़ा। अलमेलू की आंखों के सामने अंधेरा फैल गया, उसे सांस लेने में भी दिक्कत लगी। जमीन पर गिरते वक्त अलमेलू ने देखा—वे दोनों झोंपड़ियों के बीच कहीं गायब हो गये थे।

भीड़, जो इतनी देर तक झगड़ा देख रही थी, अब अलमेलू की ओर दौड़ पड़ी। किसी ने पुलिस को फ़ोन करने की बात कही। पलनीचामी कहीं से 'हाय! हाय!' कहते दौड़ आया। नथ वाली औरत ने छुरी जो अलमेलू को चुभ कर नीचे गिरी थी, उसे उठाकर अपनी टोकरी के गोबर में घुसेड़ लिया। दूसरी औरत ने अलमेलू के पर्स को उठा लिया। आंखें बंद कर खोलने में ही वे दोनों औरतें कहीं गायब हो गयी थीं।

एक लड़का दौड़ कर सोडा-पानी लाया तो पलनीचामी ने उसे अलमेलू के मुंह में डाल दिया। उसने तिरछी आंख कर एक घूंट पिया भी और दायीं तरफ अपना सिर लटका। पानी, कुछ गले में क्यों अटक रहा है, अलमेलू समझ न पायी।

'एम्बुलेन्स के आने तक न जाने जीती रहेगी या नहीं' किसी ने कहा।

अलमेलू की हालत और उसकी पीठ जो खून पलनीचामी का सीना भिगो रहा था, उसे देख लोगों ने शोरगुल कम कर दिया था। अलमेलू अपना सब बल समेट कर पलनीचामी के सीने से टिक गयी। उसे सांस लेने में भी कठिनाई हुई। उसने मुंह खोला। "हटिए, कुछ तो हवा लगने दीजिए," पलनीचामी चिल्लाया। आंखें बंद थीं अलमेलू की। पलनीचामी के हृदय की धड़कन सुनाई देती थी। जब-जब अलमेलू ने आंखें खोलीं, तब-तब उसकी उभरी आंखों में करुणा दीख पड़ती थी। अलमेलू ने महसूस किया, उसके सांस, उसके माथे से उतर कर अपने सिर पर टपकता पसीना उसे वास्तविक जिन्दगी में ले आ रहे हैं।

पुलिस वैन आई। उसमें से तीन पुलिस वाले नीचे उतरे। तभी भीड़ बिखरने लगी। अलमेलू को फिर पलनीचामी की बातें सुनाई दीं। यद्यपि उन बातों का मतलब उसकी समझ में न आया तो भी उसकी आवाज में आदमी, आदमी को दिलाने लायक स्थानीयता थी। दो पुलिस वाले पलनीचामी को खड़ा कर, छुरी के घुसने के घाव देख रहे थे, तभी अलमेलू आखिरी बार धीरे से कराही और सिसकी भर कर पूरी तरह से आंखें मूंद लीं।

"छुरी कहां रखे हो?" पुलिस ने पूछताछ शुरू की। □

अनु० : डी० एन० श्रीनाथ

व्यंग्य-कथा

आगमन वी० आई० पी० का

☐ छत्रपाल

मक्खी पड़ जाने पर चाय पीने योग्य नहीं रहती और वी० आई० पी० के आने पर शहर की सड़कें यातायात के काबिल नहीं रहतीं। सड़कें रातों-रात सार्वजनिक क्षेत्र से निकल कर निजी क्षेत्र में चली जाती हैं। और हर मोड़ पर डंडा लेकर खड़े रक्षक सेवा के लिए उपस्थित रहते हैं।

वी० आई० पी० के आते ही अपना शहर पराया हो जाता है। उसका नक़्शा ही बदल जाता है। चलती सड़कें रुक जाती हैं। उनका सत्यानाश होने लगता है। जनता के प्रतिनिधि को जनता से बचाने के लिए सड़कों के किनारे लोहे की रेलिंग लगने लगती हैं। रेलिंग के डंडों को थामे, एड़ियां उठाए, यतीम जनता अपने वी० आई० पी० रूपी स्वामी की कारों के काफ़िले के गुबार को देखती रहती है। आपने जाना होता है 'सब्ज़ी मण्डी' पर आपको भेज दिया जाता है 'गन्दम मण्डी'। 'कच्ची छावनी' जाने वाले को 'पक्की ढक्की' उतरना पड़ता है। कई बार तो रूठ कर मैके जाने वाली किसी भागवंती को लज्जित होकर पुनः ससुराल लौट जाना पड़ता है—वी० आई० पी० की खातिर।

मैं वी० आई० पी० से सदैव त्रस्त रहता हूं। जिस प्रकार सूरज और ओस एक साथ नहीं रह सकते उसी प्रकार मैं भी वी० आई० पी० का तेज सहन नहीं कर सकता। वैसे भी गरीब जनता ओस की तरह होती है। माथे पर चमकते जलते सूरज को हटा तो सकती नहीं अतः स्वयं ही लोप हो जाती है। मैं भी अपने आपको ओस की बूंद समझता हूं। इधर वी० आई० पी० रूपी सूरज निकला, उधर मैं गायब हुआ। हमारे शहर में एक पुराना किस्सा मशहूर है कि बड़े हस्पताल के जनाना वार्ड के दौरे पर आए एक वी० आई० पी० को देखकर एक बच्चे ने जन्म लेने से इन्कार कर दिया। बहुत से लोगों का सन्देह है कि वह बच्चा मैं ही था।

यदि नवजात शिशु वी० आई० पी० से इतना भयभीत हो सकता है तो मेरे जैसे वयस्क का क्या हाल होता होगा! इसीलिए मैं उसके आते ही ओस हो जाता हूं।

चुनाव न होने के बावजूद इन दिनों हमारे शहर पर वी० आई० पी० का आक्रमण-सा हुआ है। एक जाता है तो दूसरा आ धमकता है। दौरे पर दौरे पड़ रहे हैं। मेरा तजरूबा है कि जिस शहर में अधिक वी० आई० पी० आने लगते हैं, वहां कोई न कोई दंगा अवश्य हो जाता है। कई दफ़ा वी० आई० पी० दंगे-फसाद से पहले आता है तो कई बार दंगे के बाद। पहले भाषण देने आता है और बाद में दंगा-पीड़ितों को राशन देने। इस प्रकार वी० आई० पी० का दंगे से बड़ा करीबी रिश्ता है।

सड़कों के किनारे मुद्रा में खड़ा शहर हांफ गया है और सड़कें बार-बार खोदी जा रही हैं।

दौरों के इस 'सीज़न' में मुझे सातवीं बार सिद्धार्थ बन कर शहर का त्याग करना पड़ रहा है। इस दफा दंगे की आशंका कुछ अधिक ही है। एक साथ तीन वी० आई० पी० आए हैं—अनुभवी और खुर्राट।

पिछली बार मैं पूर्व दिशा वाले नगर में अपने एक रिश्तेदार के घर गया था। अभी दो दिन ही हुए थे कि दुर्भाग्यवश उस नगर में दो गुटों के बीच फसाद हो गया। कई जख्मी हो गए। सभी वी० आई० पी० अपनी टोपीगिरी चमकाने वहां दौड़े। मुझे वहां से तत्काल भागना पड़ा। वी० आई० पीज़० के आगमन पर भगदड़ और बढ़ जाने की आशंका थी।

उससे पिछली बार मंगलवार के दिन मैं पहाड़ी गांव में अपने ससुराल चला गया। सामान्यतः हमारे यहां मंगलवार को पहाड़ की ओर सफर नहीं करते। पर विवशता थी। इस महीने यह मेरी तीसरी ससुराल यात्रा थी। मुझे इस बार भी अकेले देखकर सासु जी को कुछ सन्देह हो गया। कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं! लेकिन मैं किसी और ही बात से डर रहा था। बात थी ही कुछ ऐसी। ससुराल वालों के किरायेदारों की एक जवान लड़की मुझे जीजा-जीजा कहते कुछ अधिक ही बेझिझक हो गई थी। सासु जी को यह बात जरा भी पसंद नहीं थी। मैं सच्चा होते हुए भी डर रहा था कि वे यह न समझें कि मैं उस लड़की की खातिर आता हूं। अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए पिछली बार मैंने लड़की से बात नहीं की थी। सारा दिन कमरे में दुबका रहा। रात को खाना खाकर छत पर लेटा ही था कि चुपके से आकर चारपाई पर बैठ गई।

—हमारे साथ खफ़ा हो जीजा जी!

मैं उसका हाथ अपनी ठोड़ी से हटाने ही लगा था कि सासु जी के खांसने की आवाज आई। लड़की तो भाग गई पर उसके जीजा जी की मिट्टी पलीद हो गई। सुबह मैं लौटने लगा तो सासु जी ने कहा था—अगली बार आएं तो हमारी बेटी को जरूर साथ लेते आएं।

मुझे ऐसा लगा था मानों मैं चौराहे में खड़ी एक मूर्ति हूं और किसी पेशेवर नेता ने मुझे अनावृत्त करने की रस्म पूरी की है।

घर पहुंचा तो पत्नी ने रो-रोकर मुहल्ला सिर पर उठा रखा था। मेरे पीछे किसी अदबी दोस्त ने उसके कान भरे थे। —कौन है मेरी सौतन जिसे हर हफ्ते मिलने चले जाते हो? शर्म नहीं आती, बच्चों वाले होकर इधर-उधर मुंह मारते हो।

मैं मन ही मन खुश भी हुआ कि मेरी बीवी ने मुझे इस काबिल तो समझा कि मैं एक अदद रखैल रख सकूं। वैसे यह आस टूट गई कि वह कभी मेरी व्यथा समझ सकेगी जिसके पीछे कोई लड़की नहीं वी० आई० पी० है। बीवी जेब तो टटोल सकती है पर मन नहीं।

मेरा मित्र भी मेरा दर्द नहीं जान सका। एक बार वी० आई० पी० से बच कर मैं शहर से बाहर 'इंडस्ट्रियल एरिया' में स्थित उसके घर गया। सूरज डूब चुका था और वह टिफ़िन उठाए 'नाइट ड्यूटी' पर जा रहा था। मुझे देखकर उसे ज़रा प्रसन्नता नहीं हुई। मुझे एक नुक्कड़ में ले जाकर बोला—तू ने भी अभी आना था क्या? मैं नाइट ड्यूटी पर जा रहा हूं और तुम्हारी भाभी घर में अकेली है। बेहतर होगा तुम कोई और ठिकाना ढूंढ लो। मुझे तुम पर ज़रा भरोसा नहीं। बचपन में तुम अक्सर मुझ से आंख बचा कर मेरी चीज़ें हज़म कर जाते थे।

इतने में उसकी पत्नी भी बाहर आ गई। अपने बारे में उसके विचार सुन कर मैं पानी-पानी हो गया। वी० आई० पी० पर क्रोध आया जिसने घर-घाट से तो निकलवाया, साथ में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में अपमानित भी करवाया।

मेरा मित्र यदि लक्ष्मण होता तो उसने अवश्य पत्नी के इर्द-गिर्द रेखा खींच देनी थी। मैंने स्वयं ही इन परिस्थितियों में वहां रुकना श्रेयकर नहीं समझा और अन्तिम बस पकड़ कर एक पड़ोसी कस्बे को चल पड़ा जो वी० आई० पी० के यात्रा कार्यक्रम से अछूता था क्योंकि वह विपक्ष का गढ़ समझा जाता था और वही उसे संभाल सकता था।

रात के पहले पहर मैं सरायनुमां एक होटल में पहुंचा। रजिस्टर पर नाम पता लिखने के बाद उस नगर में आने का कारण लिखना था। मुझे चक्कर में पड़ा देख होटल का रिसेप्शनिस्ट मेरा मुंह देखने लगा। मैंने झटपट आने का कारण सैर-सपाटा लिखा तो उसे भी आश्चर्य हुआ, मानों उसे भी पहली बार पता लगा हो कि उसका शहर भी पर्यटन के योग्य है। कमरे में आकर मैंने सुख का सांस लिया कि चलो बलवे की आशंका वाले अपने शहर से दूर आराम से बैठना तो नसीब हुआ।

आधी रात को किसी के दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ आई तो मेरी नींद खुली। दरवाज़ा खोला तो एक सब इंस्पेक्टर और एक कांस्टेबल जबरन अन्दर आ गए। कमरे की तलाशी लेने के लिए चीज़ें उलट-पुलट करने लगे। सब इंस्पेक्टर की छाती पर रामसरन और सिपाही पर नूर मोहम्मद की नेम प्लेटें लगी हुई थीं। मेरे झोले की तलाशी के बाद नूर मोहम्मद बोला—यहां कुछ नहीं है सर। उसकी बात सुन कर सब इंस्पेक्टर कहने लगा—क्यों जनाब कहां छिपा रखा है?

मैंने रामसरन को रामचन्द्र जी का और नूर मोहम्मद को मोहम्मद साब का वास्ता दिया कि मैंने कोई ग़ैरकानूनी काम नहीं किया। बोला—कैसी बात करते हैं जनाब? मैं स्वयं विपदा का मारा एक परदेसी हूं। वे दोनों मुझ से कोई ऐरा गैरा बरामद करवाने पर अड़े रहे।

—अगर कहें तो बरामद कर दें आपके कमरे से एक किलो······!

उसकी बात सुन कर मेरे होश उड़ गए। इंस्पेक्टर तटस्थ मुद्रा में खड़ा मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। नूर मोहम्मद ने मेरे पास आकर कान में कुछ कहा। मेरे ज्ञान चक्षु खुल गए। अपने बटुए से कुछ निकाल कर मैंने बंद मुट्ठी नूर मोहम्मद की तरफ बढ़ाई। उसने होले से 'माल' सम्भाल लिया और उस पर एक नज़र डाली। मुझे मालूम था कि सभी असंतुष्ट लोग, मुख्यतः एक विभाग विशेष में भरती हुए हैं। नूर मोहम्मद कभी मेरी औक़ात पर तो कभी हाथ में पकड़ी ज़कात पर नाक मुंह चिढ़ाता चला गया। मैं वी० आई० पी० की बदौलत माल की तस्करी के केस में फंसते-फंसते बचा। इसके बाद विपक्ष के गढ़ समझे जाने वाले उस शहर में मैं बारात के साथ भी जाने का साहस न जुटा सका।

इस बार सबसे बड़ी समस्या यही है कि जाए तो कहां ? कोई भी बर्दाश्त नहीं करता ।

इस बार शहर की सभी सड़कें बंद कर दी गई हैं । सिक्योरिटी इतनी सख्त है कि राह चलते लोगों को सिर तक खुजलाने नहीं दिया जाता । मैटल डिटेक्टर नामक नया वैज्ञानिक कुत्ता कूं-कूं करता कुछ सूंघता, हर आने-जाने वाले के पीछे पड़ जाता है । सभी अपना परिचय पत्र जेब में रखते हैं । सिंचाई विभाग का पटवारी अपना कमजोर चेहरा देखकर बार-बार रोता है और राजस्व विभाग का पटवारी अपनी शक्ल देखकर फूला नहीं समाता है ।

मैंने अभिमन्यु की तरह रेलिंग वाली सड़कों का चक्रव्यूह पार कर के एक मिनी बस ढूंढ ही ली जो बस-अड्डे की तरफ जा रही थी । भीतर सभी सीटें भरी हुई थीं लेकिन मैंने कंडक्टर की तरह अपने लिए स्थान बना ही लिया ।

मिनी बस का ड्राईवर पहले रिहाड़ी रूट पर टांगा चलाता था । उसके स्टेरिंग पकड़ने के अन्दाज़ से लगता था कि वह घोड़े की लगाम को नहीं भूल सका है । रास्ते में उसके मुंह से वे टिटकारियां भी निकल रही थीं जो उस्ताद टांगेवान अपने अड़ियल घोड़े को रवां रखने के लिए निकालते हैं ।

अगले चौक में ट्रैफिक रुका हुआ था कुछ सिपाही सड़क के बीचों-बीच खड़े थे । ड्राइवर ने ज़ोर से एक पुचकारी निकाली और स्टेरिंग खींचा । मिनी बस अविश्वसनीय ढंग से रुक गई । पता चला कि एक वी० आई० पी० ने कोई एक घण्टे के बाद इस रास्ते से गुज़रना था । उसी की राह हमवार करने के लिए जनता के रास्ते में रोड़े अटकाए जा रहे थे । ड्राईवर ने अपने खास लहजे में ट्रैफिक विभाग को पुष्पांजलि अर्पित की ।

इतनी देर में एक ट्रक आया । पहले तो उसने अपने पावर हार्न के बलबूते पर मिनी बस को हटाने की कोशिश की और फिर धड़धड़ाता हुआ मिनी बस के साथ आ लगा । जान बचाने के लिए हमारे कंडक्टर ने, जो बाहर लटका हुआ था, मिनी बस के अन्दर छलांग लगाई ।

फ्रन्ट सीट पर बैठे एक वकील ने कहा—असूलन इस ट्रक को हमारी मिनी बस के पीछे खड़ा होना चाहिए था ।

मैंने कहा—वी० आई० पी० शहर में आए हो तो सारे असूल गैसी गुब्बारे की तरह उड़ जाते हैं । वकील को कोई जवाब नहीं सूझा ।

इतने में एक छोटी कार आई और ट्रक के साथ खड़ी हो गई जिस प्रकार आज की नारी पुरुष के साथ कंधा मिला कर खड़ी होती है ।

मिनी बस में बैठे एक दुकानदार ने नाक-भौं चढ़ाते हुए कहा—जरा इन छोटी कारों को तो देखो, टिड्डी दल की तरह सारे शहर में फैल गई हैं । इतनी देर में एक मोटर साइकिल आया और उसने छोटी कार का पीछे से चुम्बन ले लिया । छोटी कार में बैठा बड़ा आदमी तमश कर नीचे उतरा ही था कि पास खड़े टांगे का घोड़ा बेकाबू हो गया । उसने टांगे वाले की तरफ रुख किया दोनों ने मिल कर घोड़े को पकड़ा । कार का चिकना बदन खरोंच से बच गया । इतने में एक आटो रिक्शा आया । ट्रक और मैटाडोर के बीच खाली पड़ी जगह को उसने बड़ी महारत से पुर कर दिया । मैटाडोर में बैठी सवारियां यह देखकर हश-हश कर उठीं ।

मिनी बस की दूसरी तरफ भी सड़क खचाखच भरी हुई थी । एक जीप, उसके साथ जुड़ा

एक रेहड़ा और दोनों के आगे खड़ा था एक ट्रैक्टर जिसकी ट्राली में कई मन हरा चारा लदा था। ट्राली के पीछे तांगे का घोड़ा ही एकमात्र ऐसा प्राणी था जो ट्रैफिक के अधिक समय तक रुके रहने की प्रार्थना कर रहा था और जल्दी-जल्दी हरा चारा निगलता जा रहा था। पीछे और-और गाड़ियां आती जा रही थीं। दोनों तरफ ट्रैफिक की तीन-तीन कतारें लग गईं जैसे भुट्टे पर मकई के दानों की पंक्तियां होती हैं।

मिनी बस में बैठी सवारियां खमीरे आटे की तरह खट्टी होती जा रही थीं। गर्मी के मारे सब के ऊपर वाले दो-दो बटन खुल चुके थे।

—वी० आई० पी० ने इतनी मुसीबत में डाल दिया है कि उन से बच कर शहर छोड़ने के लिए भी रास्ता नहीं मिल रहा। मिनी बस में बैठा एक यू० आई० पी० यानि अनइम्पार्टेंट पर्सन बोला।

—आप भी शहर से बाहर जा रहे हैं?

मैंने अपने साथ बैठे, आधे घण्टे से कुहनी चुभोते, एक बिजली पहलवान से पूछा।

उसकी दूसरी तरफ बैठे अमन पसन्द लगने वाले सफेदपोश ने भी सवाल किया—आप भी शहर से बाहर जा रहे हैं?

दस मिनट के बाद ड्राईवर सहित सभी एक दूसरे से पूछ रहे थे कि आप भी शहर छोड़ कर जा रहे हैं। मानों शहर में महामारी फैली हुई हो और समझदार लोग जान बचा कर भाग रहे हों।

मैटाडोर में बैठे सोलह सयाने रास्ता साफ होने की प्रतीक्षा कर रहे थे लेकिन गाड़ी जंग खाए पेच की तरह टस से मस नहीं हो रही थी। वी० आई० पी० के आगमन में अभी आधा घण्टा शेष था।

मैंने बिजली पहलवान से पैदल ही बस अड्डे की तरफ चलने का अनुरोध किया। उसके साथ बाकी लोग भी हो लिए।

कुछ देर बाद सोलह में से पन्द्रह दुखियारे सांझी वेदना के धागों से बंधे एक साथ बस अड्डे की ओर जा रहे थे। सोलहवां दुखियारा ड्राइवर-सीट पर बैठा, स्टेरिंग पर मुक्के मारता जा रहा था। □

'कलाकृति का पूर्णत्व ही उसका अंत है'

[चित्रकार एम० एफ़० हुसैन से मुहम्मद यूसुफ़ टेंग की एक अनौपचारिक बातचीत]

समय : प्रातः नौ बजे

तिथि : मंगलवार, 18 मई, 1989

स्थान : प्रस्तुतकर्ता का घर जवाहर नगर, श्रीनगर।

मेरी नन्हीं सी पोती 'ज़ितनी' ने चीखते-चिल्लाते हुए कमरे में प्रवेश किया, "सफ़ेद अंकल आया है ··उस बेचारे का बूट चोरी हो गया है। पांव कीचड़ से लथपथ हैं। थू-थू···।"

अभी मैं बच्ची की बातों में रस ले ही रहा था कि अपने लम्बे शरीर को सम्भालते हुए मक़बूल फ़िदा हुसैन ने दरवाज़े से भीतर प्रवेश किया। क्रिसमस के सांता क्लाज की भांति उनकी संवरी हुई घनी सफ़ेद दाढ़ी के साथ उनके सफ़ेद बाल ऐसे लग रहे थे मानो निशात बाग़ के किसी बूढ़े किन्तु 'अलिफ़' जैसे उदग्र सरू को बर्फ़ की चादर से ढक दिया गया हो। उनकी नटखट किन्तु निश्छल हंसी से ऐसी किरणें फूट रही थीं जैसे शीतकालीन सूरज बर्फ़ के सलमे-सितारों से जगमग करते पहनावे को चमका रहा हो। कल उसके चले जाने के बाद मेरी पोती ने उसे 'सफ़ेद अंकल' नाम देकर अपनी स्मृति में सुरक्षित कर लिया था। बच्चा मूलतः एक चित्रकार के समान ही प्राणियों और वस्तुओं को उनके रंगों और विशेषताओं से स्मरण रखता है। अपनी आदत के खिलाफ़ हुसैन कल जूता पहने हुए थे। आज सृजन की ज्योति से जगमगाती इस मूर्ति को देखकर 'ज़ितनी' का ध्यान तत्काल उनके असाधारण रूप से नंगे पांव की ओर आकृष्ट हुआ था और वह असमंजस में थी कि इस पहेली का परिणाम क्या है ?

मैं उठ खड़ा हुआ और हाथ थामकर हुसैन को बैठक तक ले आया। पहला प्रश्न 'ज़ितनी' ने ही उछाला था, "सफ़ेद अंकल, क्या आपके पास बूट के लिए पैसे नहीं हैं ?"

हुसैन की मुस्कुराहट ने उनकी आंखों को भी घेर लिया और वे बेबस होकर मेरी ओर देखने लगे मानों कह रहे हों कि :—

'आज अरज़ां हो कोई हर्फ़ शनासाई का'

मैंने जितनी से कहा कि अंकल का जूता चोरी हो गया है, तुम उसे पैसे दो न ? बच्ची बिजली की भांति कौंधी और खो गई। लौटने पर उसके हाथ में एक रुपये का नया-नवेला किन्तु अपने मूल्य की ही भांति हल्का और सिमटा हुआ सिक्का था।

'यह लो सफ़ेद अंकल। बाज़ार से जूता खरीद लेना।'

हुसैन ने सिक्का लेते हुए बच्ची को गले लगा लिया लेकिन उसने हुसैन के सुन्दर 'भाल' को कुछ इस तरह सींचा कि हुसैन बिलबिला उठे। इसी बीच मेरी दो साला पोती माहिम ने भी उस पर धावा बोल दिया। मैंने छींटा कसा, "हुसैन साहब, ये Soothbys के बम्बई वाले नीलाम में होने वाली दो ग्राहकों की कशमकश है, घबराइयेगा नहीं।"

हुसैन ने मेरी पोती का नाम पूछा। मैंने कहा—माहिम। वह कहने लगे, अद्भुत संयोग है कि मेरी पोती का नाम भी माहवश है।

माहिम ने हुसैन की मुट्ठी खोलकर उससे सिक्का छीनने की कोशिश की मगर हुसैन ने अपनी मुट्ठी को कसकर भींच लिया और मुझ से कहा, मेरे लिए यह रुपया उन दस लाख रुपयों से कहीं अधिक मूल्यवान है जो बम्बई में Soothbys की नीलामी में मेरे एक चित्र के मूल्य स्वरूप प्राप्त हुए थे।

मैंने अचरज से पूछा, 'क्यों, ऐसा क्यों ?'

हुसैन ने उत्तर दिया, "इसलिए कि वे रुपये फैशन और आत्म-प्रदर्शन की भावना से दिए गये थे। यह रुपया तो सचमुच मेरे लिए दिया गया···किसी स्नॉबरी के बग़ैर और किसी प्रकार के फल या प्रशंसा की आकांक्षा के बिना।"

मैंने कहा, "हमें तो गर्व है कि हमारे देश के एक चित्रकार को एक कृति के दस लाख रुपये मिले। आप सारी घटना को छोटा बनाकर क्यों प्रस्तुत कर रहे हैं ?"

हुसैन ने एक रुपये के सिक्के को सफेद बुशर्ट की जेब में सम्भालते हुए उत्तर दिया— मैं घटना को छोटा बनाकर प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं मगर यह भी तो सच है कि यदि यह नीलाम लंदन के Soothbys ने न किया होता तो क्या हमारे बड़े औद्योगिक घराने इतना बड़ा मूल्य चुकाने को तत्पर होते ? इससे पूर्व तो यहां कभी ऐसा नहीं हुआ।"

बात यद्यपि सच थी किन्तु मैं हुसैन को फांसने को आतुर हो उठा था, "तो क्या इतना बड़ा मूल्य चुकाने वाले कृति के वास्तविक पारखी नहीं हो सकते ?"

"पहले तो इसी बात को ले लीजिए कि यह धनराशि बहुत बड़ी है। योरुप में वॉन गॉग की एक कृति Iresis को 53 मिलीयन अमरीकी डालर से भी अधिक में बेचा गया था। अभी दो-चार दिन पहले उसी के एक अन्य चित्र को 45 मिलीयन डालर से अधिक में बेचा गया। उससे तुलना करने पर स्पष्ट लगेगा कि मेरा चित्र तो मूंगफली के भाव बेचा गया है।"

"क्या आप लन्दन के ग्राहकों की कलात्मक रुचि से भी संतुष्ट नहीं हैं।"

"मैं तो आपको मूल्यों के निरर्थक होने का एहसास दिला रहा था। लेकिन यह भी सच है कि जिन चित्रों का इतना अधिक मूल्य चुकाया गया है वह उसी अनुपात से उच्चकोटि की

रचनाएं नहीं हैं बल्कि उनसे कई गुणा बेहतर और महत्त्वपूर्ण पेंटिंग्ज उनसे बहुत ही कम मूल्य प्राप्त कर सकी हैं।''

अब मेरे तर्क की सांस फूलने लगी। मैंने झिझकते हुए पूछना शुरू किया, ''हुसैन साहब ! वॉन गॉग···वॉन गॉग क्या इतना बड़ा मूल्य पाने का अधिकारी नहीं था ?''

हुसैन मेरी लड़खड़ाहट से आनन्दित हो उठे और मुझे संरक्षण देते हुए कहने लगे, ''किस वस्तु का क्या मोल है, यह कौन जाने और कला की परख का क्या कोई मापदंड भी है ? मैं ऐसा नहीं समझता। वॉन गॉग इन चित्रों को एक बहुत छोटी धनराशि के लिए बेचने को तड़प रहा था मगर उसे वह भी नहीं मिली। मगर उसकी आत्महत्या ने उसके जीवन के सारे इमेज को बदल डाला। उस पर अकलात्मक दृष्टिकोण से पुस्तकें लिखी गईं। उसके चारों ओर एक शहीद का सा घेरा बुन दिया गया और वह उन धनी-मानी व्यक्तियों के लिए 'कल्ट फ़िगर' जैसा बन गया जिन्हें अपनी अपार धनराशि का कोई उपयोग सुझाई नहीं देता।''

''लेकिन आपने इन तस्वीरों के कला पक्ष पर कोई टिप्पणी नहीं की ?''

''यह सामान्य स्तर के छोटे चित्र हैं और कला के शास्त्रीय चंगुल से बाहर आने की करवट का एक हिस्सा।···अच्छी खासी हैं···लेकिन अपने में बहुत महान कलाकृतियां नहीं हैं ·यह एक सौ साल पुरानी हैं किन्तु वॉन गॉग की तुलना में सीज़ान (Cezan) ने साहस-पूर्वक अपने चित्रों में रोशनी के आयामों के ऐसे प्रयोग किए जो कालान्तर में अधिक प्रभावी एवं मान्य रहे···किन्तु कला की परख के संदर्भ में आप सिर्फ रुपये-पैसे में ही क्यों उलझ कर रह गये हैं ?''

इस उलाहने का घाव मुझे तेज बर्छी की मानिन्द तड़पा गया लेकिन मैंने सम्भलते हुए दूसरा मोर्चा खोल दिया, ''इसलिए कि जिसके पास जो चीज़ नहीं होती, उसे उसी की आकांक्षा होती है। लगता है आपको ज़ार एलेक्सांडर और नेपोलियन बोनापार्ट के बीच हुए इस वार्तालाप की जानकारी नहीं है।''

''कौन सा वार्तालाप ?''

''जब वे जर्मनी के नगर तिलसिट में शिखर-वार्ता के लिए मिले तो रूस के ज़ार ने नेपोलियन को सम्बोधित करते हुए कहा था कि महामहिम ! हम धरती के लिए युद्ध करने में विश्वास नहीं करते क्योंकि हमारे पास धरती बहुत है अलबत्ता हम अपने सम्मान के लिए मरने-मारने को तत्पर हैं।''

नेपोलियन ने अपनी मुस्कुराहट को अपने होठों के बीच दबाते हुए धीमी आवाज़ में उत्तर दिया था, ''मैं समझ रहा हूं धरतीपति, प्रत्येक व्यक्ति उस चीज़ के लिए लड़ता है जो उसके पास नहीं होती।''

मेरे उत्तर में निहित खिसियानेपन का अनुमान लगाते हुए हुसैन ने एक ज़ोरदार ठहाका लगाया और कहा, ''क्या कल के ज़ाफ़रानी कहवे की एक प्याली आज भी मिल सकती है ? यह रूस के ज़ार के सम्मान के समान आपके पास अलभ्य तो नहीं होगी।''

मैं हुसैन की बेरहमी से बेहाल हो गया। अपनी झोंक में मैं अतिथि-सत्कार की आरम्भिक औपचारिकताएं पूरी करने में विफल रहा था। संवाद की दिशा बदलने के लिए मैंने हुसैन से ज़ानना चाहा कि वे कला के 'बड़ा-व्यापार' बनने को अच्छा रुझान क्यों नहीं समझते ?

हुसैन ने बताया, "नहीं, अपने आप में यह एक अच्छी बात है। खरीदारों के आंतरिक मनोविज्ञान को यदि छोड़ दें तो इससे यह तो स्पष्ट होता ही है कि हमारे धनी-मानी लोग अब पत्थर, संगमरमर, सोने-चांदी तथा हीरे-मोती जैसे विशुद्ध लौकिक पदार्थों के जादू से बाहर निकलकर तस्वीरों को अपनी 'रीयल एस्टेट' बनाने को तत्पर हैं। कुछ भी हो, चित्र अंततोगत्वा नैसर्गिक, आत्मिक और बौद्धिक मूल्यों एवं स्थितियों का प्रवक्ता होता है और यह यात्रा हमारी सभ्यता की दिशा का निर्धारण भी करती है।"

हुसैन के थमने पर मैंने उन्हें फिर दबोचना चाहा, "मगर···मगर··· कहीं यह इतिहास वाला मगर तो नहीं कि यूं होता तो क्या होता ?"

"हम इतिहास से भाग तो नहीं सकते। इस 'मगर' का अर्थ यही है कि यह अभी हमारे भीतर से नहीं जन्मा है। यह पश्चिम के फैशन का ही पर्याय है। अन्यथा हम भी इन वस्तुओं को इनके सौंदर्य और मानसिक महत्त्व के कारण न खरीद कर फैशन के लिए खरीदते हैं। लेकिन यही क्या कम है कि विशुद्ध वित्तीय परिभाषाओं में एक नये मील-पत्थर ने जन्म लिया है।"

"वैसे आप पश्चिम की कला-परम्परा से किस सीमा तक प्रभावित हैं ?"

"प्रभावित शब्द को मैं समझ नहीं पा रहा हूं। एक चित्रकार स्थितियों एवं संदर्भों को अपने आन्तरिक मुहावरों में पढ़ता या लिखता है। पश्चिम की प्राचीन अथवा मध्य-कालीन चित्रकला की परम्परा बहुत महान नहीं है। लेकिन पश्चिम ने जिस प्रकार राजनैतिक सत्ता और बौद्धिक नेतृत्व में पहल की उसने पूर्व के चिन्तन को एक सीमा तक सुन्न कर दिया। यह विजेता के मूल्य तंत्र से प्रभावित होने के स्थान पर आतंकित होने की प्रक्रिया थी। अन्यथा आप देखिये कि पश्चिम की सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त तस्वीर—मोनालिज़ा—एक साधारण तस्वीर है। स्वयं उसके रचयिता लियोनार्दो दा विंची ने इससे कई गुणा बेहतर तस्वीरें बनाई हैं लेकिन पश्चिम की सनसनीखेज़ियत में विश्वास रखने वाले पत्रकारों और कला का कालम लिखने वालों ने इसे अपनी लेखनी के व्यायाम से निरंतर एक शाहकार के समान प्रस्तुत किया है। यह अलग बात है कि स्वयं यह तस्वीर ही उनकी लेखनी की शक्ति के अनुपात में बहुत पीछे है। वही मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त वाली स्थिति है।"

"किन्तु आप परम्परा में से सिर्फ एकाध चित्र को ही प्रमाण बना कर निर्णय देते हुए कहीं एकाकीपन का प्रदर्शन तो नहीं कर रहे हैं ?"

"नहीं यार। प्रश्न यह है कि उनकी कला का मूल रूप क्या है और वे इसे हमें किस रूप में दिखाने पर बल देते हैं। लियोनार्दो से इतर उनके महान मूर्तिकार माइकल एंगलो को ही लें। उसके मूर्तिशिल्प में हमें मानव और पशु के शरीरों का सृजनात्मक archetechtonic एहसास तो मिलता है किन्तु कला के स्तर पर तो यह हड्डियों के ढांचे अथवा रंगों के गुच्छे मात्र हैं। इनमें न तो आत्मा की आभा झिलमिलाती है और न सौंदर्य का गतिमान एहसास रचा-बसा नज़र आता है, इनकी तुलना में भारतीय मूर्तिकला में कलापक्ष बहुत उत्तम कोटि का दिखाई देता है। हमारी शास्त्रीय मूर्तिकला और उसमें चोला मूर्तिकला विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित करती है।"

"आप मूर्तिकला पर तो बात करते हैं किन्तु हमारी चित्रकला पर चर्चा को टाल जाते हैं ?"

हुसैन क्षण भर तो स्तब्ध रहे फिर कहने लगे कि तुम तो कला के दारोगा लगते हो। यह सच है कि मैं भारतीय चित्रकला की परम्परा की बात टालना चाह रहा था। इस बात को लेकर पहले ही मुझ पर नज़ला गिराया जा चुका है। उदाहरणार्थ, आदि से आरम्भ करें तो अजन्ता के चित्रों से सामना होता है किन्तु क्या इन्हें चित्र माना भी जा सकता है? इनके नखशिख में अनुपात कम ही देखने को मिलता है और इनमें अंकित मुखड़े भावनाओं के ताबूत मात्र हैं। कहीं-कहीं कलाकार ने इन चित्रों के वास्तविक उद्देश्य अर्थात् धार्मिक भावनाओं, साधना और आराधना के चित्रण से इनमें बात पैदा की है। किन्तु हमें यह स्मरण रखना होगा कि इन चित्रों की रचना बुद्धमत की पराकाष्ठा के समय में नहीं हुई थी जब इस महान धर्म ने ब्राह्मी ह्रास के विरुद्ध विद्रोह के अलाव प्रकाशित किए थे और उसके क्रांतिकारी विचार उसके अनुयायियों की धमनियों में दामिनी की भांति दमकते थे और उसका नया विश्व-दर्शन उभारते थे। अजन्ता तक आते-आते यह सब मटियामेट हो चुका था। नकार को फिर स्वीकार तथा सत्ता ने अपने चंगुल में फांस लिया था और वह उसे एक प्रेत की भांति मौत का गांजा पिला रही थी। अजन्ता के चित्र लड़खड़ाती और निर्बल आस्था रखने वाले दुर्बल हाथों का निर्माण है। इसीलिए उनकी आंखें झुकती हैं, उनकी गर्दनें लटकती हैं और उनके खुलते-खेलते हुए उरोज न तो कामोत्तेजना जगाते हैं और न भावना के माधुर्य से एकरस हैं। इसमें संदेह नहीं कि कुछ कला समीक्षक कलात्मक उत्कृष्टता से अधिक एक जनजातीय देशभक्ति की मसलहत से इस सायास को अनायास और इस साधारण को असाधारण बना देते हैं।

"लेकिन आपने यह बात पहले भी कभी कही है?"

"जी हां! मैंने बम्बई से प्रकाशित 'इलस्ट्रेटड वीकली ऑफ इण्डिया' में भी इस ओर संकेत किया है। इस पर बड़ा हंगामा हुआ था...बनारस में कुछ कला-पण्डितों ने तो विशेष रूप से मुझ पर ताबड़-तोड़ आक्रमण किए थे।"

"कहीं ऐसा तो नहीं कि आप स्वस्थ आलोचना को खामख्वाह आक्रमण समझ बैठे हों?"

"स्वस्थ आलोचना?...नहीं भाई। यह लोग तो सर्वप्रथम 'पिदरम सुल्तान बूद' का झंडा अपनी कलम पर टांक लेते हैं और तत्पश्चात उल्टे-सीधे तर्कों के ढेर लगा देते हैं। सच तो यह है कि कुमारास्वामि से इतर हमने मौलिक दृष्टियुक्त और कलापारखी दृष्टिकोण से सम्पन्न कोई आलोचक पैदा ही नहीं किया। राजनैतिक देशभक्ति तथा कला की सच्ची परख का आपस में कोई मेल नहीं क्योंकि कला की जड़ें चाहे अपनी धरती में फैली होती हैं तथापि उसकी रंगत और सुगन्ध विश्वव्यापी होती हैं। उनको संकुचित-दृष्टि की जंजीरों में जकड़ना मानवीय विरासत में प्रतिकृति भी है और सम्भावनाओं की दृष्टि से अप्राप्य भी।"

मैंने हुसैन से पूछा, "लेकिन मुग़ल शैली की मिनियेचर पेंटिंग्ज़ की तो सारे संसार में प्रशंसा और बड़ाई की जा रही है।"

"इन चित्रों के प्रति आकर्षण का एक कारण यह भी है कि इनके क्रेता यह मान कर चलते हैं कि वे महान राजवंशों के दरबारों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए उनके ऐश्वर्य और वैभव का अंशमात्र ही सही, अपने स्वामित्व में ले लेते हैं...और इस स्तर पर यह सौंदर्यवादी प्रक्रिया से पहले भौतिक तथा प्रदर्शनप्रिय प्रक्रिया बन कर रह जाती है। यूं तो ये सभी चित्र अपने रंगों के माधुर्य और उनकी सजावट की दृष्टि से अपूर्व हैं। यद्यपि इनमें उभारे गये मुखड़ों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनकी पृष्ठभूमि उनके मूल दृश्य-चित्रण पर

हावी रहती है लेकिन इसे भी एक गुण माना जा सकता है। किन्तु मुग़ल चित्र-शैली ईरानी तथा चीनी परम्परा की शृंखलाओं में आबद्ध है। इनके मोटिफ़ और विषय ही नहीं, इनका दृश्यांकन भी फ़ारसी और चीनी प्रभावों से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हो पाता। इसीलिए कला के स्तर पर इनकी परख करते समय हमें अनायास इनकी तुलना फ़ारस और चीन की उत्कृष्ट चित्रकला से करनी पड़ती है और इसका परिणाम तो विदित ही है।..."

'तो क्या आप इसे भारतीय चित्रकला से बहिष्कृत कर रहे हैं।'

"किसी व्यक्ति विशेष के कहने मात्र से किसी को बहिष्कृत या सम्मिलित तो नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि जिस समय ये कला मुग़लों के राजभवनों से बाहर निकल कर हमारे जंगलों और मैदानों, हमारे रेगिस्तानों तथा पहाड़ियों की तलहटियों में शरणागत हुई तो वहां हमारे लोक-जीवन के सम्पर्क में आने के कारण एक नई आत्मा का संचार हुआ। हमारी पहाड़ी चित्रकला का मूल आकर्षण उसके उन लोक तत्त्वों में निहित है जो उसने सीधे अपनी मिट्टी से ग्रहण किए हैं। इस संदर्भ में बसोहली कलम को एक बेहद सशक्त शैली के रूप में पहचाना जा सकता है। इसके रंगों की बेबाकी और ऊंचाई के साथ उनका परम्परा से कटाव आश्चर्यजनक है और स्वयं मैंने भी रंगों के प्रयोग में इसे अपनी मानसिकता के बहुत निकट पाया है। अवसर मिलने पर मैं इस 'कलम' का विस्तृत अध्ययन करके इस पर किसी बड़ी पत्रिका में लिखूंगा।"

"रवीन्द्रनाथ टैगोर की चित्रकला के सम्बन्ध में आपकी क्या मान्यता है? हमारी आधुनिक कला-दीर्घाओं के रखवाले तो उन्हें भारतीय आधुनिक चित्रकला का जनक मानते हैं।

"बिल्कुल वाहियात। इसमें सन्देह नहीं कि रवीन्द्रनाथ टैगोर एक महान सृजनशील चेतना से सम्पन्न कलाकार थे तथापि उनके चित्रों का कोई कलात्मक महत्त्व नहीं है। वह तो उनके मानसिक आमोद-प्रमोद अथवा तमाशे का हिस्सा है। उनमें बच्चों के समान नयेपन की ललक तो है किन्तु उन्हें कलात्मक और ऐतिहासिक महत्त्व देना ऐसा ही है जैसे संत हरिदास के ध्रुपद में पारंगत होने के कारण उन्हें एक बड़ा साहित्यकार भी मान लें। यह हम लोगों की नायक-पूजा का अनुचित प्रकटन है। वैसे देखा जाये तो रवीन्द्र संगीत को भी इसी प्रकार की अनापेक्षित चर्चा का आधार बनाया गया है। टैगोर की देन तो बस इतनी है कि उसने बंगाल के अद्भुत लोकगीतों और लोकधुनों को तनिक क्रमबद्ध करते हुए स्थान-स्थान पर उनमें पश्चिमी वाद्य-वृन्द की झंकार मिला दी। इससे जो मिश्रण बना वह न तो बंगाल का लोक संगीत बना रह सका और न ही सायास निर्मित सिम्फनी। मात्र एक खिचड़ी भर जिसे रवीन्द्र संगीत कह कर बंगाल की महानतम संगीत परम्परा को सीमित और क़ैद करने का यत्न किया जा रहा है।"

बंगाल के सम्बन्ध में हुसैन की इस तीखी प्रतिक्रिया से मैं भौंचक रह गया और उन्हें एक कमज़ोर विकेट पर धराशायी करना चाहा, "आप तो महाराष्ट्र के निवासी हैं फिर बंगाल के सम्बन्ध में यूं विश्वासपूर्वक आप कैसे कुछ कह सकते हैं?"

हुसैन ने अपनी भोली मुस्कुराहट के पर फिर खोल दिए हैं जैसे उसे मेरे अज्ञान पर क्रोध नहीं, दया आ रही हो।

"आप सम्भवतः इस तथ्य से परिचित नहीं हैं कि बंगाल को जाने बिना भारतीय कला-परम्परा को नहीं जाना जा सकता। कलकत्ता में मेरा एक स्टूडियो है और वहां अपने चित्रों

का एक म्यूज़ियम खोलने का भी मेरा विचार है। मदर टेरेसा से सम्बन्धित मेरे चित्रों की श्रृंखला से तो आप परिचित ही होंगे। अभी कुछ दिन पहले मैंने सत्यजित राय की फिल्मों पर आधारित अपने चित्रों की श्रृंखला पूरी की है और उन पर 'छविदास' के नाम से हस्ताक्षर किए हैं।''

''छविदास का अर्थ?''

''उर्दू में छवि को 'शबीह' कहते हैं और दास का अर्थ है 'खिदमतगुज़ार'। अर्थात तस्वीर का सेवक। मैंने अपने यह हस्ताक्षर बंगाली में किए हैं और उन चित्रों की प्रकृति सम्पूर्णतया बंगाली लगती है।''

''हुसैन! आपकी मूल प्रेरणा क्या है? और यह सीरीज़—रामायण, महाभारत, घोड़ा, छाता इत्यादि क्यों अपने पंजे में दबोच लेते हैं?''

हुसैन के लहज़े में पहली बार झुंझलाहट प्रकट होने लगी थी। ''क्या होती है प्रेरणा?...मेरे भीतर कोई भूत नृत्यरत था और मैं उसे बाहर निकाल कर देखना भी चाहता था और जकड़ना भी चाहता था। मेरे पिता ने अनथक प्रयास किया था कि मैं किसी और काम-धन्धे में लग जाऊं किन्तु मैं बम्बई भाग आया। यह इस शताब्दी के चौथे दशक की बात है। मैं सचमुच फुटपाथ पर सोया हूं लेकिन मेरे भीतर का भूत मुझे वहां भी डराता रहा। फिर मैंने सिनेमा के होर्डिंग्ज़ बनाने शुरू किए। मैं टीन के बड़े-बड़े तख्तों को धरती पर लिटा कर उन पर तस्वीरें और चेहरे आदि बनाता था। इससे एक तो मेरा रेखाओं के व्याकरण पर भरपूर अधिकार हो गया और दूसरे मुझे केन्वस को लटका कर चित्र बनाने के कष्टसाध्य कार्य से मुक्त होने की कला आ गई। मैं आज भी बड़े-बड़े कैन्वस धरती पर बिछा कर ही चित्र बनाता हूं और मेरा चाक्षुष संदर्श इतना लचकदार बन गया है कि मुझे इन्सानों को उदग्र देखने की आवश्यकता नहीं रही। मैं उन्हें क्षैतिज स्थिति में देख कर भी बिलकुल सही चित्रात्मक प्रभाव ग्रहण कर लेता हूं। बहरहाल, मैं कह रहा था कि मेरी मूल प्रेरणा मेरे भीतर डुबकियां लगा रहे भूत से आमना-सामना करने की थी। प्रारम्भ में मुझे अपनी लोककला के लक्षणों ने आकर्षित किया और मैंने वहीं से अपना मुहावरा ग्रहण किया...घोड़े, पनचक्कियां, घड़े, छतरियां और अनेक अन्य वस्तुएं। किन्तु इस पर भी मेरा अन्तस मेरे बाह्य से हाथ न मिला सका। इसके बाद अंधकार की वह काली छाया फैल गई जिसने मुझे सन् 1939 से 1951 तक अपनी भूतिया छांह में ले लिया। इस बीच मैं मानो 'बह्रे-जुलमात' (अटलांटिक) में डूबता-उतराता रहा।''

मैंने अपने भाषा-ज्ञान की धाक जमाने के लिए हुसैन को टोका, ''हुसैन, बह्रे-जुलमात (वह घोर अंधकार जो सिकंदर को अमृत-कुंड तक पहुंचने में पड़ा था) तो अलग-अलग चीजें हैं। यदि आपने इकबाल के मिस्रे—'बह्रे-जुलमात में दौड़ा दिए घोड़े हमने' से यह संदर्भ ग्रहण किया है तो मैं कहूंगा कि वह सिकन्दर का जुलमात नहीं अपितु अटलांटिक महासागर है।''

हुसैन ने जैसे मेरे गाल पर ज़ोर से थप्पड़ मारा हो, ''पहली बात तो यह है कि बह्रे-जुलमात और जुलमात में सिकन्दर एक सांझी कड़ी है और दूसरी बात यह कि बह्रे-जुलमात में अटलांटिक का काल्पनिक उपमहाद्वीप छिपा हुआ है। क्या पता वह सौंदर्य के पुजारी यूनानियों का चित्रालय अथवा मंदिर ही रहा हो। खैर! मैंने इस बीच प्रयोग किए। चित्र

बनाए। चित्र फाड़ दिए। यहां तक कि ब्रश को भी त्याग दिया। और फिर कड़ी परीक्षा के बाद अचानक मेरे सृजक ने मेरे भीतर उछलकूद मचाने वाले आश्चर्यजनक प्राणी को पकड़ लिया। उस समय मैं अपने चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित करने को तत्पर हो उठा। मेरा आज भी यही मानना है कि मैं इस जादुई प्राणी से अभी तक पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सका हूं। मैं इसे बाह्य-मुहावरों में पहचानने का संघर्ष कर रहा हूं और मेरे आसपास फैले प्रतीक इस जादू को तोड़ने के हथियार हैं। मेरी कला इसी निरन्तर संघर्ष की यात्रा है।''

मैंने मीर तकी मीर का शे'र पढ़ दिया—

''किया था शे'र को पर्दा सुख़न का
वही ठहरा है सो अब फ़न हमारा।''

हुसैन की हंसी लोप हो गई। मानों इस शे'र के चाबुक से उसकी समस्त इन्द्रियां झंकृत हो गई हों। ''हां, हां! बिल्कुल यही। ठीक यही बात है। किसका शे'र है?''

मैंने मीर का नाम लेते हुए इसी संदर्भ में उनसे जानना चाहा कि क्या उनको शे'रों की व्याख्या या चित्रांकन का विचार नहीं लुभाता?

''हां, हां! क्यों नहीं? फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की अंतिम पुस्तक—सारे सुखन हमारे—जो उनकी निजी देखरेख में लन्दन से छपी थी और जिसका शीर्षक शुद्ध एवं तरल सोने से लिखा गया था, जिसकी जिल्द के कोनों पर शुद्ध स्वर्ण के क्लिप लगाए गए, जिसका कागज़ विशेष रूप से हाथ से बनाया गया और जिसकी ज़िल्द के लिए नाइजीरिया की बकरी की खाल (चमड़ी) मंगाई गई...उसके लिए फ़ैज़ साहब की इच्छानुसार मैंने बहुत से रेखांकन तैयार किए थे और वे इसमें सम्मिलित हैं...क्या आपने उसे नहीं देखा?''

मैंने उत्तर दिया कि उसका मूल्य इतना अधिक है कि मेरी जेब ही नहीं, मेरी आरज़ू की सीमा से भी बाहर है। मगर उनके शे'र तो खैर संसार की सुन्दरतम वस्तुओं की भांति सहज सुलभ हैं—फूल, मोर, सुगन्ध तथा नवयुवतियों की बांकी चितवन के समान।

हुसैन ने पूछा, ''आखिर यह उर्दू शायरी घूम-फिर कर औरतों के शरीर से ही क्यों चिपक जाती है...इसकी आवाज़ में चहचहाहट क्यों इतनी मुखर है? क्या आप उर्दू का कोई ऐसा शे'र सुना सकते हैं जिसमें सांप की सीटी की आवाज़ हिस, हिस, हिस्स को बांधा गया हो? क्या यह आवाज़ आपको सुन्दर और आकर्षक नहीं लगती? ऐसा लगता है कि इस आवाज़ में सृजन की प्रथम थाप Big Bang की पद्धति से संगीत की शक्ल में ढल गयी है और अंग्रेज़ी में औरत के लिए 'शी' (She) शब्द से 'हिस्सिंग' की यही एक साथ मोहक, भयानक तथा रहस्यमयी ध्वनि निकलती है।''

हुसैन अचानक हिस्स...स्स...की आवाज़ निकालने लगे और मुझे यूं लगा मानों भोले शंकर तांडव नृत्य करते हुए अपना डमरू बजा रहे हों। मैंने हुसैन को इस अवस्था से मुक्ति दिलाने के लिए पूछा, ''आप इकबाल और टैगोर की शायरी की तुलना किस प्रकार करेंगे?''

हुसैन ने तत्काल उत्तर दिया, ''टैगोर की कविता में तो चूड़ियों की छनक मिलती है··· चूड़ियां ही चूड़ियां···ये चूड़ियां सृजन के सघन क्षणों में गूंगी हो जाती हैं। इकबाल के हाथ में तो तलवार रहती है। वह रोमान के क्षणों में भी तलवार की झंकार पर झूम रहा होता है।''

मेरे मस्तिष्क में एक और प्रश्न कुलबुलाने लगा, "आजकल तांत्रिक-आर्ट की बड़ी चर्चा है और उसकी सम्भावनाओं की नये सिरे से खोज हो रही है।"

हुसैन ने हाथ हिलाते हुए कहा, "छोड़िये, इसमें कुछ नहीं रखा। इसकी सम्भावनाएं बहुत पहले निचोड़ी जा चुकी हैं। इन तिलों में तेल नहीं है। हमारा आज का तांत्रिक इस वहशी साधना को किए बगैर प्लास्टिक की खोपड़ी से भय पैदा करना चाहता है। जिस प्रकार सम्प्रति संस्कृत में उपलब्ध प्राचीन साहित्य को मात नहीं दी जा सकती उसी प्रकार तंत्र में भी प्राचीन शिखरों को धराशायी नहीं किया जा सकता। यह मुहावरा अब सृजन का गुण नहीं बल्कि मंत्र का जाप बन चुका है...खोखला और अविश्वसनीय...।"

"किन्तु हुसैन, पश्चिम की कला परम्परा की तुलना में हमारे पास है ही क्या ?"

हुसैन ने उत्तर दिया, "पश्चिम आज तक चीन और मिस्र की कलात्मक ऊंचाइयों को परास्त नहीं कर पाया है। रेनेसां ने जब वहां मस्तिष्क को जकड़ने वाली बेड़ियों को तोड़ दिया तो पिकासो को मिस्र, अफ्रीका और मैक्सिको की आदिवासी कला की याद आयी। उसके चित्रों में बल, शक्ति और प्राण इन्हीं तत्वों को पुनः क्रमबद्ध करने तथा अधिक शक्ति-शाली ढंग से सृजित करने से आए हैं। यह तो सभ्यता के पनघट पर संवाद की स्थिति है... कभी इधर, कभी उधर।"

"आप पिकासो को कितना सम्मान देते हैं ?"

"पिकासो के सभी चित्र उत्कृष्ट कला के उदाहरण नहीं हैं। लेकिन उसे हम वर्तमान काल का सबसे बड़ा विद्रोही और स्वातंत्र्य प्रिय कलाकार कह सकते हैं। उसने कलाकृति को शास्त्रीयता की मृतप्राय जकड़न से मुक्ति दिलायी। उसे ऊंघती हुई सस्ती भावुकता से मुक्ति दिलायी। उसमें नयी सृजनशीलता को जन्म दिया और उसे उस आदमी का प्रवक्ता बना दिया जो दो विश्वयुद्धों की भट्ठी में तपने के बाद भी एक अधिक स्वस्थ और समृद्ध सृष्टि क रचना करने का साहस रखता है। इसके अतिरिक्त उसने इंसानों को घड़े-घड़ाये ढांचों में सजे-सजाए खिलौनों के विपरीत उनके नीम-वहशी अंतरंग को पहचानते हुए उसे कला के राज्य में प्रतिष्ठित किया।"

"आप क्यों स्वस्थ दुनिया के स्थान पर सुन्दर संसार की उपमा प्रयोग में नहीं लाते ?"

हुसैन ने अपने नंगे पांव—जो रेत, पत्थर और कीचड़ से निरन्तर जूझने के कारण कुछ टेढ़े-मेढ़े से लग रहे थे और जिनका अनुपात स्थान-स्थान पर बिगड़ गया था—सामने रखी हुई मेज़ पर फ़ैला दिए। फिर बोले, "सुन्दर! सुन्दर से आपका तात्पर्य क्या है? किसी पांच सितारा होटल में पड़ी हुई गोरी महिला की फुसफुसी छाती या अफ्रीका के रेगिस्तान में दौड़ने-भागने वाली किसी नीग्रो औरत की चट्टान जैसी छातियां। मेरी तस्वीरों में, वे जैसी भी हैं, क्या आपने स्ट्रोक्स की शक्ति और उनकी तेज़ धार नहीं देखी। आप उर्दू गजल की दलदली धरती को ही क्यों सौंदर्य का भंडार और खान समझते हैं।"

मैंने इस भयानक आक्रमण के सम्मुख ढाल खड़ी करने की चेष्टा की, "उर्दू गजल आग की लपटें भी पैदा करती है। क्या आपको ग़ालिब के इस शे'र का स्वाद याद नहीं—

मिलती है खूं-ए-यार से बार इल्तिहाब में
काफ़िर हूं ग़र न मिलो हो राहत अज़ाब में"

हुसैन कह उठे, "ग़ालिब न जाने कैसे उर्दू के कूचे में भटक कर आ गया है ?"

मैं फिर उल्टे पांव अपनी जिज्ञासाओं की धरती पर लौट आया और प्रश्न किया, "पश्चिम में इस समय कला की क्या स्थिति है ?"

"पश्चिम से आपका तात्पर्य यदि योरुप से है तो वहां इसका बुरा हाल है। फ्रांस ने अपने अतीत को अपने गले का फंदा बना लिया है। वे लोग अब कोई उल्लेखनीय कलाकृति नहीं दे पा रहे हैं। पिकासो को आधुनिक मान लेने पर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह हिस्पानवी सभ्यता का प्रशंसक था। फ्रांस में पूर्वाग्रह की यह स्थिति है कि वे हमारे सूज़ा और रज़ा जैसे महान चित्रकारों की जानबूझ कर अनदेखी कर रहे हैं और वह भी सिर्फ़ इसलिए कि वे दोनों उनके लिए विदेशी हैं...यद्यपि उन्होंने अपनी अधिकांश कला-साधना वहीं रह कर की है। उनके साथ खुले आम पक्षपात हो रहा है और मैं इसे 'कल्चरल एपारथीड' का ही एक उदाहरण मानता हूं। संकुचित सांस्कृतिक परिवेश से किसी बड़ी रचना की अपेक्षा नहीं की जा सकती। इसीलिए फ्रांस अब चित्रकला का मक्का नहीं रह गया है। रज़ा अब न्यूयार्क भाग गया है और हमारा मोहन सामंत भी अब वहीं पहुंच गया है। बरतानिया के लोग तो कला की दृष्टि से निरे वहशी हैं। उनकी कला में निखार सिर्फ़ दुकानदारी में आता है। सम्प्रति एक पंसारी की बेटी प्रधानमंत्री है और वे प्रसन्न हैं। पिछले कई वर्षों से उन्होंने एक भी आदरणीय या उल्लेखनीय कलाकार को जन्म नहीं दिया है। अब तो वहां काव्य तथा अन्य विधाओं में भी अकाल की सी स्थिति है। अलबत्ता, जर्मनी में अभी मुक्त मानसिकता व्याप्त है और वहां अच्छी कला जन्म ले रही है। आज वस्तु स्थिति यही है कि सम्प्रति कलात्मक गतिविधियों का केन्द्र अमरीका में स्थानान्तरित हो गया है। अमरीकी लोग पाखंडी नहीं हैं अपितु वे विशाल हृदय और बेचैन रूह के मालिक हैं। सम्प्रति कला के मूल्य तथा उनका स्तर वहीं निर्धारित होता है और नये चित्रकार वहीं नये रुझानों को संवार रहे हैं। इस समय स्थिति यह है कि योरुप में कहीं भी रची जाने वाली नयी और बढ़िया कृति किसी न किसी प्रकार अमरीका पहुंच ही जाती है। योरुप की कला-दीर्घाएं और कला संग्रहालय जीवंत कलात्मक गतिविधियों के केन्द्र न रह कर कला के मरघट में परिवर्तित हो गए हैं। अमरीका के गले में अतीत-पूजा की खोपड़ियां भी नहीं हैं। वे एक नवयुवा दूल्हे की भांति अपनी आत्मिक और भावनात्मक तृष्णा की किसी सीमा में बंधे हुए नहीं हैं और न ही किसी झूठे भ्रम के शिकार हैं। अमरीका ने पिछले दिनों ग्रीनबर्ग, जैक्सन पोलक, मार्क रूथको और डेमोनिंग जैसे कलाकारों को जन्म दिया है। सोवियत यूनियन, चीन तथा पूर्वी योरुप के समाजवादी देशों, विशेष रूप से चेकोस्लाविकया, में नारेबाजी का ठहराव टूट रहा है और एक नया कलात्मक क्षितिज उदित हो रहा है।"

मैंने हुसैन से जानना चाहा कि उन्हें श्रीनगर कैसा लगा ?

हुसैन ने उत्तर दिया, "पहले तो श्रीनगर में आते ही एक भिन्न नगर में पहुंच जाने का एहसास जागता था। सम्भव है शहर के भीतरी भाग में अब भी वैसी ही स्थिति हो किन्तु सिविल लाइन्स तो नितान्त मुखविहीन लगती है। उदाहरण के लिए सचिवालय तथा उच्च न्यायालय के भवनों की बात करें तो हमें लगेगा कि इनका न तो अपना कोई विशेष चरित्र है और न आकर्षण। ये गोदामनुमा भवन लगते हैं तथा कानपुर, विजयवाड़ा अथवा किसी अन्य शहर में भी हो सकते हैं। श्रीनगर की निजी पहचान को मिटाया जा रहा है और यह उन आर्किटेक्ट्स की कृपा से हो रहा है जिन्हें या तो अपनी परम्परा का ज्ञान नहीं है या फिर वे इस सन्दर्भ में हीन-भावना से ग्रस्त हैं।"

"हुसैन साहब, हमारी भारतीय चित्रकला की भी कहीं ऐसी ही स्थिति तो नहीं है ?"

"जी नहीं। यह हमारे कला समीक्षकों का भ्रम है। अभी कुछ दिन पहले मैंने 'टाइम्स ऑफ इन्डिया' के श्याम लाल से बात की थी। जब तक पश्चिम से किसी चीज़ का प्रमाणपत्र न मिल जाये इन लोगों का आत्मविश्वास लड़खड़ाता रहता है। अन्यथा वस्तुस्थिति यह है कि इस शताब्दी के सातवें दशक में भारतीय कला का एक स्पष्ट और बिल्कुल अलग चेहरा उभर चुका था और इस तथ्य को पश्चिम ने भी स्वीकार किया है। यह अपनी जड़ों में धंसा हुआ है और इसके प्रयोगों में सच्चाई है और सहजता भी।"

"मैंने हुसैन से फिर पूछा, "कल आप जूता पहने हुए थे तो आज फिर क्यों नंगे पांव चल रहे हैं ?"

हुसैन ने सूचित किया कि अभी कुछ दिन पहले नई दिल्ली में एस्कोर्टस के तत्वाधान में चलने वाले एक अस्पताल में उनके हृदय की 'बाई-पास-सर्जरी' हुई थी। कल यहां धरती नम थी—इसीलिए स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें जूता पहनने पर विवश होना पड़ा था। किन्तु आज पुरानी आदत ने फिर विद्रोह कर दिया था।

मैंने हुसैन को चालू वर्ष में अकादमी द्वारा आयोजित किए जाने वाले आर्टिस्ट कैम्प में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया।

"मैं प्रयत्न करूंगा। मैं लगभग 25 मई को अमरीका जा रहा हूं। वहां से समय रहते लौट आया तो कुछ दिन आपके कैम्प में बिताऊंगा। शर्त यही है कि वहां पुपुल जयकर और जहांगीर साबवाला जैसा कला समीक्षक न हों।"

"क्यों ?"

"ये लोग सिर्फ जंग लगे चित्रों और मूर्तियों को उनकी ऊंचाई का लिहाज़ करते हुए कला मानते हैं। अभी उन्होंने आधुनिक कला की जांच-परख की अदा नहीं सीखी है। हां! एक शर्त और भी……।"

"कहिए ?"

"जब मैं काम करूं तो उसकी वीडियो फिल्म बना कर सुरक्षित कर लेंगे।"

"इसका कोई विशेष कारण ?"

"हां! क्योंकि चित्रकूट पूरा कर लेने के बाद मैं उसे जला देना चाहूंगा।"

मैं आश्चर्यचकित होकर पूछने लगा, "मगर आप ऐसा क्यों करेंगे ?"

"इसलिए कि पेंटिंग का पूरा हो जाना उसके निधन की घोषणा भी है। वास्तविक आनन्द तो सृजन-प्रक्रिया में है। जब चित्र को ही गन्तव्य समझा जाने लगेगा तो सृजन-प्रक्रिया का क्या होगा ? देखिए…ईश्वर ने अपने लिए किस सीमा तक रचनात्मक स्वतन्त्रता ले रखी है। वह बच्चे की रचना को आशीर्वाद देता है तथा 'फार्म' और 'कांटेंट' को लेकर नये प्रयोग करता है। लेकिन जब यह रचना पूरी हो जाती है तो उसे कब्र अथवा श्मशान घाट में ले जाकर मिटा डालता है और इस प्रकार सृजन-प्रक्रिया के आनन्द तथा ताज़गी का क्रम बनाए रखता है। जिसका परिणाम इस संसार के इस सीमा तक सुन्दर और इस सीमा तक रहस्यमय बने रहने में दिखाई देता है। जिस दिन संसार में मृत्यु समाप्त हो जायेगी। हम जैसे कलाकारों को इस संदर्भ में प्रकृति के संकेतों को समझना चाहिए।"

हुसैन ने गहरी बात की थी जिससे मन ही मन मैं सहमत था मगर हम दोनों अब थके-थके लग रहे थे लेकिन अभी भी कुछ प्रश्न मस्तिष्क में उथल-पुथल मचाए हुए थे—"हमारे देश, विशेष रूप से केन्द्र, में कला की उन्नति के लिए कुछ अकादमियों की स्थापना की गई है। इनके काम के सम्बन्ध में आपके विचार जानने को उत्सुक हूं ?"

"कला की उन्नति ? अरे यार वे तो कुछ कर्मचारियों की चरागाहें हैं अथवा सरकार के मनोरंजन-स्थल···इनमें कोई गम्भीर काम नहीं होता अपितु इन्होंने कलाओं को व्यक्तिगत झगड़ों के अखाड़ों में परिवर्तित कर दिया है। कला मात्र प्रदर्शन और बहस की वस्तु नहीं है और न ही आदेश पाकर आगे बढ़ती है। यह तो एकांत का शौक है। मेरे विचार से तो यदि सभी अकादमियों को बंद कर दिया जाये तो सच्चे और अच्छे कलाकारों के पथ और अधिक प्रस्तुत होंगे। सम्प्रति तो अकादमियां राजनैतिक पैंतरेबाजी का घर बन गई हैं। अच्छे कलाकार इनसे दूर हैं और दूसरी या तीसरी श्रेणी के कलाकार इन पर छाए हुए हैं।"

"आप सरकार की कला-सेवा पर इस प्रकार कुपित क्यों हैं ?"

"इसलिए कि सरकार कोई भी चीज़ अपनी सुविधा के बिना नहीं देती और किसी शायर ने कहा है कि—

"मांगने वाला गया है सिदका मांगे या खिराज"

मैं मानता हूं कि सरकार की तुलना में यदि निजी कार्पोरेट संस्थान आगे आकर कला-कृतियों को प्राप्त करें तो परिस्थितियां बेहतर हो सकती हैं। जवाहर लाल नेहरू कला के अच्छे पारखी थे···इन्दिरा जी तो चोरी-छिपे कला-प्रदर्शनियां देखने आती थीं। यह उनकी सरकारी प्रतिष्ठा का नहीं अपितु व्यक्तिगत रूचि का प्रदर्शन था। किन्तु अब ये सारी बातें एक स्वप्न लगती हैं। कला को केवल संग्रहालय तक सीमित रहने वाली गतिविधि अथवा उसी की सम्पत्ति समझा जाता है और उसकी सुरक्षा के लिए चंद कोतवाल हथकड़ियां बजाते नज़र आते हैं।

अब हम दृष्टिकोण में स्पष्ट विरोध के बिन्दु तक पहुंच गए थे, लेकिन मैं अपने घर में अपने प्रतिष्ठित अतिथि से उलझना नहीं चाहता था अतः मैंने आने वाले कल मुख्यमंत्री के साथ निर्धारित भेंट की चर्चा छेड़ दी।

"जी हां ! वे दिल्ली में नर्सिंग होम आकर मेरा हालचाल पूछ गए थे। वे मुझ से बड़ा लगाव रखते हैं और यदा-कदा मेरे पास आते रहते हैं। उन्होंने मुझे कश्मीर आने का निमंत्रण दिया था। उन्हें मेरी एक तस्वीर, जो उन्होंने यहीं के एक कला प्रेमी अब्दुल रशीद मीर साहब के घर में देखी थी, बड़ी पसन्द है।"

"यह तस्वीर किस विषय पर है ?"

"इसमें गोपाल कृष्ण कन्हैया को गाय के गर्भ में दिखाया गया है।"

मुझे हुसैन की एक बड़ी आश्चर्यजनक तस्वीर याद आ गई, "हुसैन साहब, जब कुछ वर्ष पूर्व नई दिल्ली की रवीन्द्र भवन कला दीर्घा में आपके चित्रों का सिंहावलोकन आयोजित हुआ था तो गांधी जी का एक बड़ा अजीब चित्र वहां प्रदर्शित किया गया था। गांधी जा रहे हैं और उनके हाथ में लाठी के स्थान पर बिजली का लैम्प है।

"जी ! गांधी जी का नश्वर शरीर तो उनके महान् अंत से बिजली के इस लैम्प में ही

परिवर्तित हो गया था जो पुनः-पुन: हमारे हृदय के सूनेपन और अन्तरात्मा की फ़सल में चमकता रहेगा……।"

मुझे अनायास ग़ालिब का एक मिस्र : याद आ गया और मैंने हुसैन को सुना दिया—

"इबादत बर्क़ की करता हूं और अफ़सोस हासिल का"

हुसैन ने तत्काल प्रशंसा की और बोल उठे, "वाह ! वाह !"

मैंने पूछा, "कल आप रात के अन्धेरे में गैस्ट-हाउस से भाग कर ब्राडवे होटल क्यों चले गये थे ?"

हुसैन ने उत्तर दिया, "मुझे सायं-सायं करता हुआ इतना बड़ा गैस्ट हाउस बहुत ठंडा और आत्माविहीन लगा। वहां बैरों के चेहरों पर झांकती नौकरी की बेबसी और बनावटी मुस्कान से में ठिठुर गया था। विजय दर का निमंत्रण तो मुझे पहले से ही प्राप्त था। उनके पिता डी० पी० दर—भी मेरे मित्र रहे हैं। मैं ब्राडवे के सूट नम्बर ग्यारह में चला गया और वहीं पांव पसार कर सो गया था।"

मैंने जानना चाहा कि उन्हें कल की शालीमार की सैर कैसी लगी थी ?

उन्होंने बताया कि शालीमार में गहराई है किन्तु उसका रहस्य तो रात के अंधेरे में ही प्रकट होगा और रात को वहाँ जाने की अनुमति नहीं है।

हुसैन खड़े हो गये। माहम को गोद में उठा लिया और नीचे खड़ी तवाज़ा की कार की ओर चलने लगे।

मैंने पूछा, "क्या मैं इस बातचीत को लेखनीबद्ध कर सकता हूं ?"

हुसैन ने सिर हिला कर अनुमति दे दी—"लेकिन ज़रा धीमे सुरों में।"

अगले दिन बम्बई से उसके साथ टेलीफोन पर बात हुई तो उन्होंने कहा, "माहम को माहवश सलाम कहती है।" □

अनु० रमेश मेहता

कवितायें

कूड़मगज़ धरती

□ लीलाधर जगूड़ी

कल का कूड़ा इतिहास में बदल गया है
आज का इतिहास कूड़े में
एक दिन समय और संस्कृति की पहचान वाले
आयेंगे
और इस कूड़े में से कुरेद कर दिखायेंगे
कोई एक युद्ध
जिसे वे बतायेंगे कि यह महायुद्ध था
जबकि जो लड़ रहे थे वे समझ नहीं रहे थे
वे ढूंढ कर दिखायेंगे कोई जर्जर ममता
और थरथर कांपती मानवता की
अनन्त क्रूरता भी

इस कूड़े में से वे बीन कर लायेंगे
कोई अत्याधुनिक ध्वस्त नगर
और बतायेंगे कि इतिहास में वह असल में था कहां पर

धरती के किसी कूबड़ से निकल आयेगा एक जनपद
हथियारों और भांडे-बर्तनों के साथ
किसी पेड़ का ठूंठ जूते जैसा निकल आयेगा
एक पांच फुट लम्बा जूता
तब तलाश होगी एक पांच फुट लम्बे पैर वाले
मानव कंकाल की जिसे यह पहनाया जा सके
देखिए वर्तमान में कितने सारे काम हैं
इतिहास वेत्ताओं और पुरातत्वविदों के पास

जिस जल्दबाज आदमी की जीभ
रोज गरम चाय से जल जाती है
वह कहता है कि जहां जा रहा हूँ जो कर रहा हूँ मैं
उससे एक इतिहास बना रहा हूँ मैं
एक ऐसा फिल्टर बना रहा हूँ
जो आदमी के लिए हवा और पानी
दोनों छान देगा

और यह भी बता देगा लगे हाथ
कि दुनिया में कि कितने पंक्चर होते हैं
रोज
कितनी हवा बनाते हैं पम्प
आदमी को बस फिल्टर रहना होगा
और वह बचा रहेगा इतिहास बनते हुए सारे प्रदूषण से

अपनी जली हुई जीभ और दुखते हुए कण्ठ को
आखिरी घूंट का सेंक देते हुए
अविलम्ब समय में वह पाता है अपने को विलम्ब से
तब तक चारों ओर फैल जाती है
ढेर सारी भागम-भाग और ढेर सारी कूड़ता।

एक जो संगीतकार हैं मोहल्ले के गुमशुदा नुक्कड़ पर
उनका स्वर
सारे मोहल्ले और मानव जाति के
ढेर पर से लहराता हुआ रोज उड़ जाता है

पूरे कूड़े में कभी नहीं पाया जायेगा वह स्वर
जब पाया जायेगा कोई स्वर
तब पहले एक फीता पाया जायेगा
या प्लास्टिक का कोई चूड़ीदार टुकड़ा
इनमें चिपकी हुई सड़ रही होंगी
कई ऐतिहासिक आवाजें

और यह कूड़मगज धरती
एक दिन सारे स्वर
सारे शब्द / सारे स्वाद
फिर से सम्भव कर देगी
कृपा पूर्वक इतिहासकारों का आंगन
अपने पार्थिव यश से पाटते हुए
फिर से कल का कूड़ा इतिहास में
और आज का इतिहास कूड़े में धर देगी। □

दो कवितायें

सूर्य

□ शैलेन्द्र शैल

यह सूर्य है
नई सुबह का
उगता हुआ सूर्य

उठो और इसे पहचानो
सच बताओ
तुमने कितनी बार देखा है
उगता हुआ सूर्य

(माफ़ करना मैं बहुत जल्द
तुम पर उतर आता हूँ
मानता हूँ यह बुरी आदत है
पर मैं विवश हूँ)

सूर्य जो जीवन देता है
वनस्पतियों को शक्ति और ऊर्जा
सहस्रों वर्षों से हमारे संग है
एक मित्र की तरह

एक रविवार
किसी एक रविवार
अलस्सुबह उठो
इसकी गरिमा को देखो
और आत्मसात् करो इसकी भव्यता को

दूर अनंत में
पहाड़ों के पीछे
एक बच्चे की साइकिल के पहिए सा
गोल
निकलता है बिलानागा

इसे देखो और पहचानो
इसे पहचानना
एक माने में
अपने आपको पहचानना है

तुम भी तो
एक सूर्य हो ! □

चंदन

तुम मेरे लिए आज भी
अपने हो—बिल्कुल अपने
उस एक पल में
जिस निर्णय ने
मुझे धकेल दिया
एक अलग मंज़िल की ओर
जैसे कोई शरारती बच्चा
उछालता है गेंद
खुले आकाश में !

उस एक पल में हम
अपरिचित हो गए
जैसे कभी मिले ही न हों
वह एक पल
एक युग में बदल गया
अचीन्हे और अजाने ही

और जब उस दिन वर्षों बाद
तुम तक पहुंचा भटकते हुए
तो घर भर में व्याप्त
कई गंधों में
तुम्हारी गंध तलाशता रहा
वही चिर परिचित गंध
जिसे बरसों से
अपने अस्तित्व में समाए
घूम रहा हूँ
चंदन की तरह ! □

दो कवितायें

वचनबद्धता

□ भगवान देव 'चैतन्य'

चाहने भर से,
भला कभी कुछ हुआ है ?
हुआ होता
तो यूं प्रतिदिन मौसम न बदलते।
न होती
धूप-छांव की आँख-मिचौली
और वक्त के हर वृक्ष पर केवल
फूल ही फूल टहकते।

मैंने बहुत बार चाहा
गढ़ूं कुछ ऐसे प्रसंग
जो तारीकियों के संघर्ष में
मेरे हथियार बनें
निर्मित करूं ऐसे ढंग
जो उत्ताल तरंगों में उलझी
किश्ती के पतवार बनें।
मेरे गीत
पुल बन जाएं
और पगडण्डियां मेरी कविताएं
एक मात्र चाहने भर से
होता ही क्या है ?

यहां तो हर बार
हर किसी के पक्ष में मुझे ही लड़ना पड़ा
बन कर हथियार
मैं स्वयं बन गया हूं पुल
जिसे रौंद कर हर कोई उतरा है
उस पार ।

मेरी वचनबद्धता
न आकाश के प्रति थी
और न ही धरती के प्रति
चलना चाहा था अपने पैरों से
तैरना चाहा था अपने हाथों से
स्वयं जीना चाहे थे दो पल
स्वयं के प्रति ।

मगर अब तो मैं
आसमान के हर प्रकोप को
अपने सीने पर सहता हूँ
और
नदी के प्रति वचनबद्ध होकर कहता हूं
मेरे होते कोई तुम्हें
अपने पैरों के स्पर्श से
अपवित्र नहीं कर सकेगा । □

कब मशाल बनेंगे

पहाड़ पिघल रहे हैं
नदियां जम रही हैं
गांव और शहर की दहलीज पर स्थित
बूढ़े बरगद की आंखों में
उतर आया है मोतियाबिन्द ।

कोटर में बैठा उल्लू
रात के पहले पहर में
अपनी भाषा और भावों की पूरी शक्ति से
वर्तमान के कानों में
फूंक रहा है—गुरुमन्त्र
ताकि भविष्य में
बची हुई शाखाओं पर भी
हो सके उसका आधिपत्य ।

कल जो रोशनी बांटने निकले थे
मशालें लेकर
बन चुके हैं तवे
नीचे जल रही हैं मशालें
और उन कर सिक रही हैं—
सिरफिरे समाज की रोटियां ।

शहर की सड़कें
गांव की पगडण्डियां
अब प्रतीक्षा में हैं—
तवे पिघल कर
फिर से कब मशाल बनेंगे । □

तीन कवितायें

शाम

□ दिवा भट्ट

एक

यह शाम
ढलती नहीं किसी कदर
रेत बन कर खिसकती भी नहीं
तलुओं के नीचे से ।
'रिंगरोड'-सी अछोर फैल जाती हैं स्मृतियाँ
मैं अपने से पूछती हूँ—
कहाँ घूम रही है तू ?
जवाब में चक्कर···चक्कर

आकाश लाल हो गया है
शाम साँवली,
तेरे कदमों के बेरुखी से मुड़ जाने के बाद
मेरी हकीकत बन गई एक उदास शाम,
चन्दनी सुगन्धों से दूर हो गई यह शाम
ऐस्किमो देश में ऐसे ही मुर्झाती है हर शाम
महीनों बाद सूरज निकला
और निकलते ही डूब गया

घाट पर पानी फिर गया है,
सीढ़ियाँ कहाँ जाकर पूरी होंगी
कुछ पता नहीं चलता ।

मैं नील नदी की गहराई क्यों न हुई ?
सुला लेती खोखली दीवालों को,
पी लेती तनहा साँसों के सैलाब ।
क्या मिज़ाज होगा उस देश का
जहाँ हर शाम
रथ के घोड़े खोल कर थका-हारा
सूरज समुन्दर में नहाता होगा । □

दो

यह शाम
सुबकने लगी है फिर से
आसमान की नसें फटी जा रही हैं ।
मेरी नसों का रक्त छितरा गया है हवा में
रात का इन्तजार भी भारी हो गया है आज
तेरे गुज़रते कदमों के पीछे
उदास हो गईं सड़कें ।
मुर्दा सड़कों के संवेदन जाग उठे
तो प्रत्येक गाड़ी का गुजरना
अपनी छाती पर से
कितना चुभता रहा सड़क को !
लालटेनी रोशनी में
मुस्कराना किसी झोंपड़ी का
याद आता रहा रात भर
बिजली के खम्भे देखकर । □

तीन

यह शाम
खामोश हो गई ऐसे
जैसे रात की चादर से
किसी ने तोड़ लिये हों सितारे
युगों बाद
पानी बरसा भी तो कोलतारी सड़क पर
(यहां कोई पोधा उगेगा भी ?)

सूरज की परिक्रमा पूरी होने पर
बरगद के पैरों को खुरच कर
निकलती है एक गिलहरी

और घर को लौटती हुई
सूरज की किरणें
जहाँ-जहाँ ठिठकी थीं ठहरी थीं
जम्हाई थीं,
वहां लोट-लोट
खेलने-कूदने, भागने दौड़ने
तिनके बीनने चिटकारी देने में
अपने आपको भूल जाती है
सौ फीसदी
गिलहरी। □

कविता

मनाही के बावजूद

□ क्षमा कौल

जिसे मानना छोड़ दिया था किताब
उसे मैंने मानना शुरू किया किताब
वहां रह रहे आदमी को जगाया
कि किताब में बन्द किए जाने के बाद से
वह हो चला है प्रौढ़
उत्तरदायित्वपूर्ण

अचानक आसान हो उठा है मेरे लिए
तुम्हारे हर सवाल से जूझना
पर वह भयानक रूप से प्रश्न-हीन

पूछो कि कहां रही मैं गुम इतनी देर
कि मुझे मिला था राह में एक दीप्त पुरुष !
पर चमक सिर्फ सोने की ही नहीं होती
वह कुछ रो लिया कुछ उसने सह भी लिया।
जैसे मेरे आदि मनुष्य की सादगियां
यों वह मेरे साथ कुछ रह लिया
और भाग निकला
मैंने उसे पकड़ा
मैंने नहीं चाहा वह मुझे छोड़े
मैंने नहीं चाहा वह भागे
लेकिन वह·····
भागा और भागता ही गया
मेरे हाथ नहीं थे लम्बे········

मैं हूँ आसन्न प्रसवा······
मेरे अंदर भर गई हैं बेहतरीन कविताएं
पर मेरा प्रसव होता है चीरने से ही
मैं अपनी कौन सी नस चीरूं
कि सारी बेहतरीन कविताएं जो उतर आयें
कागज पर
राह दिखाएं मुझे भरें, जनें

मेरे प्रेम ! तुम तो मौन हो पर
मैं चाहती हूं तुम्हें बताऊं
शब-खून
और शब-खून में भी मैंने अपना बदन खोला था
मैंने बहने दिया था खून
मैंने उससे स्पर्श मांगा
मैंने पाया
अरे पर त्रासदी कि
पुरुष होकर भी चीखा था वह 'बलात्कार'

मेरे वृद्ध प्रेम ! न सनो अश्रुओं में······तुम !
जीवन कहीं खत्म नहीं होता···
मैंने पहने अपने वस्त्र···
और जिस अजान कोने में
संभाला था जीवन
खर्च कर रही हूं उसी में से थोड़ा-थोड़ा
हां मुझे अब भूख कभी महसूस नहीं होती······

और मैं लेती हूं भूख की गोलियां
ताकि मैं अपने कोने में
बचे जीवन को एकदम समाप्त न करूं ।

मेरे कृशकाय जर्जर प्रेम ! तुम सुन कर बहा सकते हो अश्रु,
नहीं बता सकते हो ईश्वर बन कर मार्ग ?

तुम्हारी मनाही के बावजूद
मैं जानती हूं ।
मुझे करना ही है एक और प्यार
ताकि मेरे पास बचे जीवन की पूंजी शेष रहे । □

मूल्यांकन

लेखक की ज़मीन

लेखक : गोविन्द मिश्र
प्रकाशक : साहित्य भण्डार
50 चाहचन्द, इलाहाबाद
मूल्य : 40 रुपये

एक लेखक में थोड़ा गधापन भी होना चाहिए

□ महाराज कृष्ण संतोषी

पहले साक्षात्कार सिर्फ एक अखबारी विधा हुआ करती थी किन्तु आज यह कलाकारों और साहित्यकारों तक फैल गई है। साक्षात्कार को एक साहित्यिक विधा के रूप में अपेक्षित मान्यता नहीं मिली है लेकिन इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि इस की लोकप्रियता बढ़ी है और पत्र-पत्रिकाओं में आए दिन लेखक कलाकारों के साक्षात्कार प्रकाशित होते रहते हैं।

साक्षात्कार एक ऐसी विधा है जिसमें दूसरे की उपस्थिति अनिवार्य है। अन्य साहित्यिक विधाओं में रचना के स्तर का निर्माण रचनाकार की प्रतिभा से तय होता है लेकिन साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता की प्रतिभा का भी दखल रहता है। उसकी मानसिक सक्रियता, बौद्धिक सम्पन्नता, वैचारिक संतुलन और विषय का पूरा ज्ञान श्रेष्ठ साक्षात्कार के लिए अनिवार्य है।

इस कसौटी पर देखें तो **'लेखक की ज़मीन'** में संकलित साक्षात्कार काफी सफल कहे जा सकते हैं। सुप्रसिद्ध कथा-उपन्यासकार गोविन्द मिश्र से समय-समय पर किये गए ये साक्षात्कार एक सफल साहित्यिक कृति बन पड़ी है जो पाठकों को संतुष्ट ही नहीं करती बल्कि वैचारिक स्तर पर उद्वेलित भी करती है।

सन् 1975 से लेकर सन् 1989 तक फैले ये बारह साक्षात्कार गोविन्द मिश्र के लेखन तक ही सीमित नहीं हैं ; इस में समकालीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों आदि के बारे में भी काफी रोचक तक अद्‌भुत टिप्पणियां हुई हैं। ऐसा इसलिए सम्भव हुआ है कि ये साक्षात्कार उन व्यक्तियों द्वारा लिए गए हैं जो स्वयं कलम के धनी हैं।

किसी भी लेखक की रचनाएं पढ़ते समय हम उस लेखक के निजी जीवन के बारे में भी जानना चाहते हैं। यह जिज्ञासा स्वाभाविक भी है। प्रस्तुत साक्षात्कारों में गोविन्द मिश्र की निजी जिन्दगी के बारे में काफी बातें हुई हैं। उनके साहित्यिक संघर्ष को भी कवर किया गया है। कई साक्षात्कारों में गोविन्द मिश्र ने अपने निजी जीवन और संघर्ष के बारे में ये बातें दोहराई भी हैं जो किताब छापने पर हटाई जा सकती थीं।

गोविन्द मिश्र से लिए गए इन साक्षात्कारों की एक विशेषता यह है कि इनमें लेखक मसीहाई अंदाज़ में नहीं बोलता। वह स्पष्ट भी करते हैं कि 'मेरी कोशिश लेखन के माध्यम से एक साधारण आदमी के स्तर तक आने की है।' यहाँ तक कि वह अपने पास थोड़ा गधापन भी रखना चाहते हैं।

जहां गोविन्द मिश्र ने अपने लेखन से जुड़े प्रश्नों के बेबाक उत्तर इन साक्षात्कारों में दिए हैं, वहीं विचार-धारा, प्रतिबद्धता, साहित्यिक आंदोलन, समकालीनता आदि विषयों पर भी दो टूक उत्तर दिए हैं। यह जरूरी नहीं हम उनके उत्तरों से सहमत हों लेकिन इन उत्तरों से हमारे भीतर काफी उथल-पुथल होती है।

कुछ टिप्पणियां उद्‌धृत करना चाहता हूं :

1. समकालीन लेखन अगर एक बहाव है तो उसमें उसका (लेखक का) शरीर तो रहे लेकिन सिर ऊपर जिसे वह दूर तक देख सके।

○○

2. आंदोलनों से शिकायत मेरी यह है कि ये लेखक की रचनाधर्मिता गहराते नहीं। उन्हें शार्ट कट बताकर उल्टे रास्ते चलाते हैं इसीलिए इससे जुड़े लेखक भी समाप्त हो जाते हैं।

लेखक अपने को एक खाली कटोरे की तरह रखे। जो उसमें भरे, उसे उंडेल दे, फिर खाली हो जाए।

○○

बहुत सारे लेखक जो किसी आइडियोलॉजी, पार्टी या इस तरह के कमिटमेंट में फंस जाते हैं, उनकी लेखकीय खोज खत्म हो जाती है। इसलिए मैं व्यक्तिगत रूप से इस चीज को बड़ा दुश्मन समझता हूं लेखक का कि वह किसी चीज में विश्वास करता है।

○○

ऐसी कितनी टिप्पणियां इन साक्षात्कारों से उद्‌धृत की जा सकती हैं। सहमति और असहमति का अधिकार सब के पास मौजूद है। इसलिए महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आज लेखक की इन बातों से सहमत होते हैं अथवा नहीं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इनके पीछे

बोलने वाला एक लेखक कितना ईमानदार और सजग है। 'लेखक की ज़मीन' के सभी साक्षात्कार गोविन्द मिश्र की आत्मा का अनावरण करते दिखाई देते हैं। यहां तक कि आध्यात्मिकता तथा वैराग्य पर भी अपने विचार प्रकट करते हुए वह तनिक भी नहीं झिझकते। क्योंकि उसके चिंतन की मीनारें कच्ची नहीं हैं और वह अपने लेखन में फ़ैशनपरस्ती को क़तई बढ़ावा नहीं देना चाहता। वह केवल अपने लेखन से दुःख को उठाना चाहता है। उसके लिए 'सहने वाला पात्र विद्रोह करने वाले पात्र के मुकाबले ज़्यादा विद्रोह पैदा करता है।'

'लेखक की ज़मीन' में गोविन्द मिश्र एक सहज, सरल, संवेदनशील तथा अनुभवी व्यक्ति के रूप में उभरे हैं। यही कारण है कि इन साक्षात्कारों से गुज़रते वक्त पाठक एक पल के लिए भी ऊब नहीं जाता जो इस संकलन की सबसे बड़ी सफलता है।

भविष्य में साक्षात्कारों के माध्यम से हम और बड़े-बड़े साहित्यकारों की सोहबत का लाभ उठाएंगे। □

चिट्ठी-पन्ना

शीराज़ा के ताज़ा अंक देखे हैं, चाव से पढ़ गया हूं उनमें संपादक की गंभीर और रुचिसम्पन्न दृष्टि दिखाई पड़ती है। तोषखानी की कवितायें और चन्द्रकांता का उपन्यास 'वितस्ता जहां बहती है' दोनों अंकों की जान हैं। सार्थक अंक निकाल रही हैं। प्रसन्नता है।

—अमृत राय, इलाहाबाद

शीराज़ा के अंक मिले। शशि शेखर तोषखानी की रचना 'अपना शहर छोड़ने के बाद' मर्म को छूती है बहुत सुन्दर शब्दों में विस्थापितों की पीड़ा को उकेरा है उन्होंने। बधाई !

—चन्द्रकांता गुड़गांव

आपके सम्पादन में प्रकाशित शीराज़ा के तीन अंक प्राप्त हुये। परम्परा को आपने बनाये रखा है। बधाई स्वीकार करें।

—कीर्ति केसर जालन्धर

आपके सम्पादन में शीराज़ा के सराहनीय अंक प्राप्त हुये। साहित्यिक पत्रकारिता को आज आपके सहयोग की बड़ी आवश्यकता है।

—धर्मेन्द्र गुप्त

आप द्वारा प्रेषित शीराज़ा देखकर प्रसन्नता हुई। संत कवि सुथरा शाह पर डॉ० धर्मपाल सिंहल का खोजपूर्ण लेख बहुत पसंद आया। आपके कुशल सम्पादन में 'शीराज़ा' की उत्तरोत्तर प्रगति की कामना करता हूं।

—केदारनाथ प्रभाकर, सहारनपुर

शीराज़ा के नये अंक प्राप्त हुये। प्रकाशित सामग्री बढ़िया और ज्ञान वर्धक है। कहानियां अच्छी लगीं। अन्य भारतीय भाषा की कहानी का हिन्दी अनुवाद छाप कर आप एक समय से प्रतीत हो रही कमी को पूरा कर रही हैं।

—अवतार कृष्ण राजदान, नई दिल्ली

शीराज़ा में प्रकाशित शशि शेखर तोषखानी की कविताओं ने आकर्षित भी किया प्रभावित भी।

—कृष्ण मुरारी पहारिया, कटरा बांदा, उत्तर प्रदेश

शीराज़ा के नवप्रकाशित अंक प्राप्त हुये। तोषखानी की 'अपना शहर छोड़ने के बाद' तथा सुरेश सेन की 'बहुत दिनों बाद' कवितायें बहुत अच्छी लगीं। इधर अच्छी कविताओं का अकाल सा हो गया है। बधाई !

—केदारनाथ अग्रवाल, बांदा उत्तर प्रदेश

शीराज़ा के नये अंक प्राप्त हुये। विश्वास है आपके सम्पादकत्व में शीराज़ा और भी ऊंचाइयों को स्पर्श कर सकेगी। आवरण, साज सज्जा पर अवश्य पुनर्विचार करें।

—कमल किशोर गोयनका दिल्ली

आपके संपादन में शीराज़ा अपना स्तर बनाये हुए है। नये अंक पाकर हर्ष हुआ। मोहन सपरा, तोषखानी, तथा बलदेव वंशी की रचनायें सुन्दर लगीं।

—शैलेन्द्र शैल नई दिल्ली

शीराज़ा पाकर प्रसन्नता हुई। ऐसे हालात में ऐसी साफ-सुथरी सुरुचिपूर्ण पत्रिका निकाल रही हैं। बधाई !

—आशा रानी व्होरा

आग्रह—

वार्षिक सदस्यता शुल्क निम्न पते पर 10/- रुपये डिमांड ड्राफ्ट/धनादेश/पोस्टल आर्डर से भेज कर समय भी बचाएं, असुविधा भी ।

पता :

एडीशनल सेक्रेटरी, जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजिज़
जम्मू—180001

○○

प्रकाशित कृति को समीक्षार्थ भेजते समय कृपया दो प्रतियां भेजना न भूलें ।

—सं०—

अकादमी डायरी

○ नाट्य प्रस्तुति

22 अप्रैल 1990 को रामनगर में 'इप्टा' ने डोगरी नाटक 'दिन बार' का मंचन प्रस्तुत किया। स्व० श्री नरेन्द्र खजूरिया ने रामनगर में रहते ही इस नाटक की आधार कथा रची थी। यह नाटक गत वर्ष हुई नाटक-प्रतियोगिता में भी प्रथम पुरस्कार पा चुका है।

○ लोक-संगीत सभा

16 जुलाई 1990 को अखनूर के एक गांव में एक लोक संगीत सभा आयोजित की गयी जिसमें श्रीमति प्रकाशो देवी तथा 'पूरनसिंह पूरन' ने अपनी-अपनी गायक मण्डलियों के साथ कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इसी रोज़ यहां की एक स्थानीय संस्था की ओर से **'रूट्ट-राड़े'** लोकपर्व भी मनाया गया।